वर्ष ३२ अंक ६

जून १९५१

वैशाख २००८

वैदिक धर्म

[जून १९५१]

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
सहसंपादक
श्री महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

विषयानुक्रमणिका

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके लिये ६॥) रु.

वर्ष ३२ वैदिकधर्म अंक ६

क्रमांक ३०

▲ वैशाख, विक्रम संवत् २००८, जून १९५१ ▲

हमारा संरक्षण

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत् समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यग्वि चारीत् ॥

ऋग्वेद ७।२५।१

हे उग्र इन्द्र ! (यत् समन्यवः सेनाः) जब हमारी उत्साही सेना (समरन्त) युद्ध करने लगे तब (महः नर्यस्य ते बाह्वोः) जनताका हित करनेवाले पराक्रमी वीरोंकी भुजाओं द्वारा (दिद्युत्) तेजस्वी चमकनेवाले बिजलीके अस्त्र हमारी (ऊती) रक्षा करनेके लिये ही ठीक शत्रुपर जाकर (पताति) गिरते हैं । ऐसे समय तेरा (विश्वद्र्यक् मनः) सर्वत्र दक्षतापूर्वक निरीक्षण करनेवाला मन (मा विचारीत्) दूसरी ओर न जावे । हमारा संरक्षण न करते हुए दूसरे कामोंमें फंसा न रहे ।

सेनापतिको अपनी सेनाका उत्साह बढाना चाहिये । उत्साही सेनाके साथ शत्रुसेनापर आक्रमण करना चाहिये तथा उत्साह पूर्वक युद्ध करना चाहिये । ऐसे समय जनताका हित करनेके लिये हम शस्त्र चला रहे हैं, इस बातको ये वीर न भूलें । वीरोंका मन इसके सिवाय दूसरी ओर न जावे । शस्त्रास्त्र तेजस्वी होने चाहिये एवं जनताके संरक्षणके लिये ही उनका उपयोग होना चाहिये ।

▲ कृष्ण कृष्ण हरि हरि ▲

अनेक व्यक्ति इस मन्त्रका जप किया करते हैं, किन्तु वह केवल इन अक्षरोंका उच्चारण होता है। वह रहस्यको समझकर किया गया जप नहीं होता। इसलिये फलदायक नहीं होता। इस मन्त्रका रहस्य यह है—

'कृष्ण' अर्थात् 'काला' यह एक रंग है। दिनमें जब सूर्यका प्रकाश विद्यमान रहता है तब जो काला रंग अस्तित्वमें रहता है वह सच्चा काला रंग नहीं होता। सूर्य अपने सात रंग उनमें मिश्रित कर देता है और उस प्रकारका मिश्रित काला रंग वह हमें दिखाता है। शुद्ध काकास्याह काला रंग, जो अंधेरी कोठरीमें पूर्ण कालिमा रहती है, तद्रूप होता है। किन्तु बिल्कुल अंधेरेमें जहाँ जरा भी प्रकाशका समावेश नहीं होता, ऐसे बंद कमरेमें बैठनेपर और आंखें बंद करनेपर भी हमारा मन अनेक प्रकारकी कल्पनायें करता ही रहता है। उस मनमें सात्विक-राजसिक तामसिक कल्पनाओंकी तरङ्गोंके समान भिन्न भिन्न रङ्ग तथा भिन्न भिन्न दृश्य वहाँ भी उत्पन्न होते रहते हैं। अर्थात् वहाँ भी इस कृष्णके दर्शन नहीं होते। जबतक यह मन स्तब्ध, निर्विकार व विचाररहित अर्थात् पूर्णतः रिक्त नहीं हो जाता तबतक इन काल्पनिक दृश्योंका बंद होना सम्भव नहीं है। मनको निर्विकार करनेका अभ्यास प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। अभ्यास एवं तत्परताके द्वारा मन जैसा चाहें वैसा कल्पनारहित हो जाता है।

जब इस प्रकार यह मन कल्पनारहित हो जाता है तभी अंधेरी कोठरीमें बंद की हुई आखोंके सामने सच्चा शुद्ध काला रंग 'कृष्ण' सच्चा काला 'कृष्ण' दर्शन देता है। अंधेरी कोठरी ऐसी बंद होनी चाहिये कि उसमें प्रकाश जरा भी न रहे, हवा आती रहे किन्तु प्रकाश न हो; आंखें बंद कर देनी चाहिये और मनको बिल्कुल पूर्ण रूपसे निर्विकार, कल्पनारहित, निश्चल और शान्त करना चाहिये।

संसारकी किसी बातका अथवा अपने अस्तित्वका भी विचार न करे। ऐसा प्रयत्न किया जाय तो कुछ दिनोंमें इस सच्चे कृष्णका स्वच्छ काले रंगका-दर्शन होता है। ऐसी स्थिति होनेतक नानाप्रकारकेरंग और नाना प्रकारके दृश्य बंद आँखोंसे भी दिखाई देंगे। पाठक अपनी आंखें बंद करके इसका अनुभव लें। ऐसी स्थितिमें जो काला रंग दिखाई देता है वह विशुद्ध नहीं होता। किशमिशी, ऊदास, पिलास, निलास आदि रंगका मिश्रण उस काले रंगमें रहता है। यह सच्चा कृष्ण नहीं है।

इन रङ्गोंसे मन सात्विक विचार कर रहा है, राजसिक विचार कर रहा है अथवा तामसिक विचार कर रहा है, इस बातका पता चल जाता है और अपने मनकी सच्ची परीक्षा इस समय हो सकती है।

सतत प्रयत्न करके इस मनकी कल्पनासे उद्भूत होनेवाले ये रंग दूर किये जा सकते हैं तथा मनके शान्त होने पर सच्चे, विशुद्ध कृष्णके-कृष्ण वर्णके-दर्शन होते हैं। ये दर्शन स्थिर अर्थात् बहुत देर तक होते रहनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। यह विशुद्ध कृष्णवर्ण दर्शनकी स्थिति सतत अपनी इच्छा जबतक हो तबतक स्थिर रखनी चाहिये। अधिक काला, बिल्कुल काला किट्ट रंग हमारी आंखोंके सामने रहना चाहिये।

ऐसा रंग आंखोंके सामने-अंधेरी कोठरीमें बंद की हुई अपनी आखोंके सामने-इस प्रकार बिल्कुल काकास्याह विशुद्ध रूपमें काला रंग आते ही चाहे जैसा सिरदर्द हो तब भी वह एकदम रुक जावेगा और जबतक वैसा रंग दिखाई देगा तबतक पुनः नहीं दुखेगा। आंखोंको पूरा विश्राम मिलेगा। आंखोंके ७५ प्रतिशत रोग दूर होंगे, यदि चश्मा लगता होगा तो इस अभ्याससे वह हटाया जा सकेगा और एक प्रकारका अपूर्व, शान्तिमय उत्साह प्रतीत होगा तथा वह स्थायीरूपसे टिकेगा भी।

अच्छा अभ्यास हो जानेपर दोनों हाथोंके तलवे दोनों आंखोंपर रखनेपर भी इस कृष्णवर्णके दर्शन किये जा सकते हैं। आँखोंपर कभी किसी प्रकारका दबाव नहीं पड़ने देना चाहिये। 'कृष्ण' दुःखोंका हरण करता है इसलिये उसे 'हरि' कहते हैं। इस बातका अनुभव पाठक करें। 'कृष्ण कृष्ण हरि हरि' इस मन्त्रका यह मर्म है। यह कृष्ण अनेक दुःखोंका हरण करता है।

विचारणीय पत्र

सेवामें

श्री. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी,
"संपादक, वैदिक धर्म"

श्रीमानजी,

आपके कृपा पत्र ता. २१. ३ का निम्नलिखित उत्तर "वैदिक धर्म" में प्रकाशनार्थ भेज रहा हूं:—

(१) पूर्ण धीरजके साथ सदुत्तरकी प्रतीक्षा करनेके अनंतर स्पष्ट शब्दोंमें मतभेद प्रगट करना क्रोध नहीं है।

(२) आपने अपने जीवनव्यापी वेदप्रचारमें जो आर्थिक हानि और कष्ट उठाया है उसके लिए आपसे मेरी हार्दिक सहानुभूति है। पर यह विषय प्रसंगसे बाहर है इस लिए नम्रताके साथ इसकी चर्चासे निवृत्त रहना चाहता हूं।

(३) वेद, पुराण, स्मृति, ऋषि, महर्षि अवतार आदिकी कसौटी पर सत्यको न कसकर सत्यकी कसौटीपर ही उनकी जांच होनी चाहिए। उनके उदाहरणोंकी चर्चा भी प्रसंगसे बाहर होनेके कारण त्याज्य है।

(४) सार्वजनिक लोक-हितकर, असुर-विनाशी मानव-धर्म ही मनुष्यता या "सत्य" है।

(५) राष्ट्रके उत्थानमें संख्याबलकी अपेक्षा मनुष्यताका ही महत्व स्वीकरणीय है। संख्याबल पशुबल ही है। संख्याबलसे दुर्नीति-परायण आसुरी राज्यकी स्थापना होना "जनराज्य" नहीं किंतु दानवराज्य है। एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भयम्"। भारत माताके वक्षस्थलपर मनुष्यतारूपी सिंह-शिशुका सुप्त रहना ही भारतकी दुर्दशाका एकमात्र कारण है। भारतके अत्याचारित समाजकी जन संख्या अत्याचारी समाजकी जनसंख्यासे तीन गुनी है! सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारी प्राकृतिक आकस्मिक घटनाओंके आधीन जन संख्या वृद्धिके अनधिकार तथा असार प्रचारके द्वारा अभागे हिन्दु-समाजको अज्ञानांधकारमें निमज्जित रखनेके दुराग्रहको त्यागकर भारत माताकी गोदमें मनुष्यतारूपी सुप्त सिंह-शावकको जागृत करनेमें आत्मनियोग करना ही सच्चे जन-सेवक राष्ट्र-हितैषी, सुसाहित्यिकका समयोचित कर्तव्य होना चाहिए। मनुष्यता हीन होकर नारी-निर्यातन होने देनेके अनंतर उन निर्यातित, शत्रु-कवलित देवियोंके प्रति असार, नपुंसकोचित वाङ्मय सहानुभूति दिखाना निरर्थक है। असुर-दलनकारी मनुष्यताको जागृत करनेसे ही-क्रियात्मक सहानुभूति और नारी निर्यातनका सच्चा प्रतीकार होना संभव है। आसुरी कुशासनके दबावमें आया हुआ आजका देशद्रोही, स्वार्थान्ध, चाटुकार साहित्यिक समाज सच्ची राष्ट्र-सेवासे सर्वथा पराङ्मुख है।

भवदीय

रामकालगंदोत्रा मंत्री,

न्याय-भवन, भारत वर्ष

सूचना— 'श्री कृष्णावतारमें अपहृत स्त्रियोंका प्रश्न' शीर्षक लेखमें व्यक्त किये हुए विचारोंके साथ पाठक इस पत्रके विचारों पर तुलनात्मक रूपसे विचार करें। तथा अपने अपने विचार प्रकाशनार्थ भेजें।

---

३१ मार्च व १ अप्रैलकी संस्कृत परीक्षाओंके निरीक्षक

क्रम	नाम	स्थान	क्रम	नाम	स्थान
१	श्री. वल्लभभाई पटेल	वल्लभविद्यानगर	२१	श्री. अंबालाल रणछोडभाई पटेल	मंडाला
२	,, राजेन्द्र शास्त्री	,,	२२	,, नानजीभाई इरजीभाई पटेल	,,
३	,, मंगलभाई धोरीभाई पटेल	सैजपुर	२३	,, मास्टर. अमूलमल सुमोमल	साबरमती
४	,, माणेकलाल जेठाभाई उपाध्याय	चान्दोद	२४	,, एन. एन. दवे.	बिलीमोरा
५	,, भोगीलाल चुनीलाल भट्ट	,,	२५	,, मा. गं. कोराने	,,
६	,, दयालजी भीमभाई	सोनगढ	२६	,, श्री. टी. रामन्	जालना
७	,, वासुदेव दत्तात्रय	नन्दुरबार	२७	,, डाह्याभाई मानिकलाल	बडौदा
८	,, रा. न. पटेल,	आणन्द	२८	,, म. नारायणाचार्य कृष्णाचार्य शिरहट्टी	बेलगांव
९	,, जेठालाल. सो. शाह.	,,	२९	,, सूर्यकान्ता. जगन्नाथ. भट्ट	गोधरा
१०	,, उमियाशंकर ठाकुर	,,	३०	,, ह. म. पाठक	व्यारा
११	,, नटवरलाल. दवे	,,	३१	,, शेषराव. गणपतराव. तिवारी.	तलमोड
१२	,, भूपेन्द्र साकरलाल. देसाई	हाँसोट	३२	,, जी. एस. क्षीरसागर	धार.
१३	,, विश्वनाथन्	कुंभकोणम्	३३	,, जे. जे. शुक्ल	नवसारी
१४	,, भाऊराव हरि. बराटे	भुसावळ	३४	,, कीकुभाई. र. देसाई	बलसाड
१५	,, माधवराव. का बराटे	,,	३५	,, दिनकरराय. चन्द्रशंकर. भट्ट	,,
१६	,, इ. मधुसूदनरावजी	वरंगल	३६	,, भ. रा. मिस्त्री	,,
१७	,, विठ्ठलभाई पुरुषोत्तम पटेल	नारगोल	३७	,, हरकिशनदास मिस्त्री	,,
१८	,, जयराम. लहानू राणे	कठोरें	३८	,, नवनीतलाल. ज. भट्ट	,,
१९	,, ईश्वरलाल. के. मिस्त्री	पारडी	३९	,, परागजी. नी. देसाई.	,,
२०	,, केशवप्रसाद. र. शाह	,,	४०	,, उपेन्द्रभाई आणंदराम. जोशी	,,
			४१	,, भीखुभाई स्वरूपचन्द शाह.	,,

पता बतलाईये

पं. विश्वनाथजी शास्त्री, वेद-व्याकरणतीर्थ लिखित " विश्वपर हिन्दुत्वका प्रभाव " पुस्तकका पता चाहिये। यह पुस्तक कलकत्तेसे प्रकाशित हुई है। पर वहां लिखनेसे कोई उत्तर नहीं आता। किसी सज्जनके पास हो तो दूने मूल्यमें क्रय की जा सकती है। सूचित करें।

सम्पादक- ' वैदिक धर्म '

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप

[लेखांक १]

(लेखक— श्री. पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर)

भारतीय संस्कृतिकी महिमा सभी गाते हैं। किन्तु प्रत्येकका दृष्टिकोण भिन्न भिन्न होनेके कारण सभी अपने अपने दृष्टिकोणके अनुसार, संस्कृतिका जो स्वरूप उसने मान लिया है उसीकी महिमा वह गाया करता है। इस-लिये पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, आचार्य कृपलानी, श्री पट्टाभि सीतारामय्या योगी, अरविन्द घोष, सुभाषचन्द्र बोस-आदि विचारवान पुरुष यद्यपि भारतीय संस्कृतिकी महिमा गाते हैं तथापि ये सब एक ही संस्कृतिकी महिमा नहीं गाते। इनमें यदि हम पू० माधवराव गोलवलकर गुरुजी, वीर सावरकरके विचार देखें तो संस्कृति विषयक और भी भिन्न मत हमें इनके विचारोंमें दिखाई देगा। किन्तु ये सब भारतीय संस्कृतिकी ही महत्ताका वर्णन करते हैं! तथापि यह भारतीय संस्कृति है कौनसी? यह प्रश्न कम महत्व पूर्ण नहीं है। आकाश-पाताल जितना अन्तर इनमें होना सम्भव है, यह बात हमें भूलनी न चाहिये।

बुद्ध संस्कृति

पं० जवाहरलाल नेहरू, डॉ० अम्बेडकर ये बुद्ध संस्कृति को सर्वश्रेष्ठ मानकर, वही भारतीय संस्कृति है ऐसा समझकर उसका वर्णन किया करते हैं। यदि ऐसा न होता तो उन्होने बुद्ध-चक्र, बुद्ध-सिंहको अपने चिन्ह न माना होता। बुद्ध संस्कृतिके मुख्य सूत्र—

१- सर्वं क्षणिकं

२- सर्वं दुःखमयं

३- सर्वं अनीश्वरं विश्वं

ये हैं। समस्त विश्व क्षणभङ्गुर, दुःखमय तथा अनीश्वर है। इन तत्वोंको इनकी संस्कृति मानती है। और भी जो कुछ इनके मन्तव्य हैं वे भी ऐसे ही अर्थात् इन्हीं तत्वोंपर आश्रित है। जैन संस्कृति भी ऐसी ही है। अतः उसकी विवेचना पृथकसे करनेकी आवश्यकता नहीं है। इन दोनों धर्मोंने 'अहिंसा' का नारा जोरोंसे लगाया। इसीलिये इनकी आज विशेष रूपसे मान्यता है। क्यों कि स्व० महात्मा गांधीजीने भी इसी तत्वका अङ्गीकार किया। अहिंसा का राजनीतिमें महत्व बढाया और स्वराज्य प्राप्त करा दिया। यह इस अहिंसाका चमत्कार है; ऐसी भावना बन जानेके कारण इस समय बहुसंख्यामें अहिंसाकी श्रेष्ठता मानी जाने लगी है। किन्तु भविष्यमें जाकर पाकिस्तान क्या निश्चय करता है, इसका पता चल ही जायगा।

हिन्दु-मुस्लिम मिश्र संस्कृति

कुछ दूसरे विचारक इससे भी आगे बढकर इस प्रकार-से प्रतिपादन करते हुए दिखाई देते हैं कि हिन्दु और मुस्लिम इन दो विचार प्रवाहोंका मिश्रण हमारी भारतीय संस्कृति है। अभी तक ये संमिश्रणवादी ईसाई विचार प्रवाहको भारतीय संस्कृतिमें मिलाते हुए दिखाई नहीं देते। यह मिश्रण अच्छी प्रकारसे हो इसके लिये मिश्र विवाह, मिश्र खान-पान, मिश्र भाषा, मिश्र रहन सहन तक करनेका उपक्रम इन्होंने किया था। मिश्र भाषा बनानेका प्रयत्न तो कई वर्षोंतक चलता रहा, किन्तु वह सफल नहीं हुआ। इस प्रयत्नमेंसे पाकिस्तानका निर्माण हुआ और उस पवित्र-स्थानसे अपवित्र हिन्दुओंका उच्चाटन पश्चिमको ओर हुआ तथा पूर्वकी ओर भी वैसा ही हुआ। हमने संमिश्रण करनेका यत्न आरम्भ किया; किन्तु संमिश्रण तो तभी सम्भव है जब कि दोनोंकी इसके लिये सहमति हो।

उनमेंसे यदि एक तैयार न हो तो संमिश्रण होना संभव नहीं है। ऐसी स्थितिमें जब कि पाकिस्तानको निर्हिन्दु करनेका बीडा पाकिस्तानने उठाया हो तब वास्तवमें संमिश्रणवादियोंका मत समाप्त होजाना चाहिये था; किन्तु जब तक भारतमें मुसलमान रहेंगे तबतक ये संमिश्रणवादी थकेंगे, ऐसा दिखाई नहीं देता!! इनका उत्साह बहुत तगडा दिखाई पडता है।

तथापि पाक लोगोंने इनके मतका खूब खण्डन कर दिया है। अर्थात् अब हमें यह समझ लेना चाहिये कि ईसाई-मुसलमान-हिन्दुकी संमिश्र संस्कृतिका प्रश्न अब विशेष जोरोंसे सामने आयेगा ही नहीं।

इससे पूर्व गुरु नानकने इस संमिश्रणके प्रश्नको उस समय खूब अच्छी प्रकारसे निर्णयकर किसी निष्कर्षपर पहुँचाना चाहा था; किन्तु उनका यह प्रयत्न सफल न हुआ। राजपूतोंने अपनी बहन-बेटियाँ बादशाहोंको देकर समिश्रण प्रारम्भ किया; किन्तु वह भी एक पक्षीय बात सिद्ध हुई। सम्पूर्ण इतिहास यदि देखा जाय तो यही दिखाई देगा कि हिन्दुओंके संमिश्रणके लिये तैयार होनेपर भी दूसरे इसके लिये तैयार नहीं होते और इसके परिणाम स्वरूप ये प्रयत्न असफल होते रहे हैं।

मिश्रणके परिणाम

आजके संमिश्रवादियोंने पंजाब आदि स्थानोंपर पाकिस्तान बननेसे पूर्व संमिश्रणके प्रयत्न किये, किन्तु उसमें भी हिन्दु ही घाटेमें रहे। अर्थात् संमिश्रणवाद एकतर्फा होनेके कारण सफल नहीं होता यह बात स्पष्टतः सिद्ध हुई। यही बात बंगालमें निर्माण होनेवाला आजका इतिहास तथा भविष्यमें निर्माण होनेवाला इतिहास सिद्ध करेगा। क्योंकि इसमें कोई ऐसी बात नहीं है जो अस्पष्ट हो। पाकिस्तानी तो खुले आम कह रहे हैं कि अखंड हिन्दुस्थान ही हमारा है तथा यदि संमिश्रण होना है तो वह यवनीकरणसे ही होगा। संमिश्रणवादी कमसेकम आज तोभी पूर्ण यवनीकरण करनेके लिये तैयार नहीं हैं। इससे पता लगता है कि यह प्रश्न यहीं पर समाप्त होजानेवाला नहीं दीखता।

अर्थात् संस्कृतिका जो भी कुछ मिलाप होना होगा वह हिन्दु-मुस्लिम ईसाइयोंका मिलकर नहीं होगा। यह प्रश्न कमसेकम हमारी समझसे तो परे का है। अतः इस प्रश्नको यदि यहीं छोड दें तो अवशिष्ट प्रश्न रहता है बुद्ध एवं हिन्दु संस्कृतिके संमिश्रणका। आज हम देख रहे हैं कि जैन अपनेको पृथक् माननेके लिये तैयार हो गये हैं। यदि एक बार बौद्ध भी इसी प्रकारसे प्रथक् हो गये तो फिर हिन्दु किसका मिश्रण करेंगे?

जैन अलग हो गये!

बहुतसे लोग यह समझ बैठे हैं कि बुद्ध धर्मका हिन्दु-धर्ममें मिश्रण हो गया है। मिश्रण हुआ सा दिखाई अवश्य देता है और यह सत्य है। इसी प्रकारसे मिश्रित हुए हुए जैन निधर्मी सरकारका मन्दिर-प्रवेशका कानून बनते ही फूटकर पृथक् हो रहे हैं। निधर्मी सरकार इसी प्रकार और कोई कानून बना सकती है और यदि वह बौद्धोंके लिये प्रतिकूलसा हुआ तो बौद्ध भी उसी प्रकार पृथक् हो जावेंगे!! किन्तु बौद्धोंके दुर्भाग्यसे भारतमें वे बहुत ही थोडे हैं।

क्योंकि वे बहुत ही थोडे हैं, अतएव उनके मिश्रणका कोई विशेष मूल्य नहीं। जैन उनकी अपेक्षा अधिक हैं, वे फूटते जा रहे हैं। इस प्रकार यह मिश्रवाद अस्त होता जा रहा है!!!

अतएव यदि हम आग्रहके साथ मिश्रण न करें तो ही ठीक है। वह यदि होना होगा तो हो जाएगा, न होना होगा तो न होगा। किन्तु यदि हठ पूर्वक संमिश्रण किया गया तो वह बिना घातक सिद्ध हुए न रहेगा।

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप

संस्कृतिके विषयमें जब हम विचार करते हैं तो हमें इसके लिये बुद्ध पूर्वके समयमें जाना चाहिये। उस समय भारतीय संस्कृति कैसी थी यह जानना आवश्यक है। संमिश्रणकी कल्पना पूर्ण करनेके लिये हम चाहे जितनी आतुरता दिखावें किन्तु यदि उतनी ही आतुरतासे दूसरे भी उसके लिये तत्पर न हों तो संमिश्र संस्कृतिका निर्माण नितरां असम्भव है। यही कारण है कि इस विषयके

किये गये अबतकके सम्पूर्ण प्रयत्न असफल सिद्ध हुए हैं। अब हम दो समयोंपर विचार करेंगे। एक बुद्धकालीन तथा दूसरा बुद्धपूर्व। वैदिक संस्कृतिका मुख्य तत्व–' सब कुछ आनन्दमय है, और बुद्ध संस्कृतिका मूल तत्व–' सब-कुछ दुःखमय है '। अन्य तत्व भी इसी प्रकार परस्पर विरोधी हैं। तब इनका मिश्रण कैसे सम्भव है? वैदिक-धर्मी लोग विश्वरूपको परमेश्वर मानकर वह विश्व आनन्दमय है, ऐसा माननेवाले हैं तथा अनन्यभावसे इस विश्वरूपकी वे सेवा करेंगे और बुद्ध धर्मी लोग विश्वको दुःखमय मानकर उसका परित्याग करनेका यत्न करेंगे। इन दोनोंकी संस्कृति भला किस प्रकार संमिश्रित की जा सकती है?

संमिश्रण असंभव

अब तकके विवेचनसे यह निष्कर्ष निकला कि सिद्धा-न्तोंकी दृष्टिसे इन दो विचार प्रवाहोंका संमिश्रण होना संभव नहीं है और इसी लिये वह होगा भी नहीं। पुराण कालमें हिन्दुपुराणकारोंने बौद्धों को प्रसन्न करनेके लिये बुद्धको अवतार सिद्ध किया तथा बुद्ध तत्व ज्ञान भी लग-भग स्वीकार कर लिया। सम्पूर्ण दर्शनोंको तथा अवतार माननेके पश्चात्के ग्रन्थोंको देखिये, साधु सन्तोंको देखिये, कथाकीर्तनकारोंको देखिये, प्रवचनकारों एवं पुराण वक्ता-ओंको देखिये, अपनी वाणीसे बौद्ध विचार सरणीका ही प्रतिपादन करते दिखाई दे रहे हैं। वैदिक विचार सरणी इस संमिश्रणके पश्चात् अवशिष्ट रह ही न सकी। अर्थात् वैदिक धर्मकी दृष्टिसे यह उसका पराभव ही समझना चाहिये।

आजके हिन्दु समाजमें क्षणभङ्गुर विश्व, संसारत्याग-के बिना मुक्ति असंभव, यह विश्व त्याज्य है, आदि जो विचार उठ रहे हैं वे सब बुद्ध-संस्कृतिके हैं। इस बौद्ध विचार धाराके कारण दृश्य विश्वकी ओरसे दृष्टि हटकर वह परमार्थिक भावोंपर जा पहुँचती है। दृश्य विश्व बंधन कारक है, शरीर बन्धन है- इस प्रकारकी विचारधारा जबतक रहेगी तबतक कभी भी दृश्य विश्वकी ओर मनुष्य-की दृष्टि न जा सकेगी। बौद्ध विचारधाराके कारण गृह-स्थाश्रमकी जडें खोखली होगईं, और स्त्री अधम मानी गई। यहाँतक मान्यता हो गई कि यह जीवन ही न चाहिये। सम्पूर्ण लक्ष्य निर्वाणकी ओर केन्द्रित होनेके कारण इस जगतकी ओरका ध्यान क्रमशः कम होता गया। इसका परिणाम यह हुआ कि कोई भी आकर हिन्दुओंको दबा देता और उनपर राज्य कर लेता; हिन्दु उनसे मेल मिलाप बढानेके लिये उनके पीछे दौडते !!!

वैदिक सम्प्रदायका अन्तिम ग्रन्थ ' भगवद् गीता ' है। इस ग्रन्थमें बताया गया है कि विश्वका यह दृश्यमान स्वरूप ही परमेश्वरका रूप है। संहिता-ब्राह्मण-आरण्यक तथा उपनिषदोंका भी यही विचार है। ईश्वरका स्वरूप त्याज्य, हेय तथा दुखदायी होना संभव नहीं है। विश्व-रूपके अन्तर्गत जन्म होना सौभाग्यकी बात है। अतएव स्त्री स्वर्गसे भी श्रेष्ठ है। इस प्रकारकी यह विचार धारा बुद्ध पूर्व वैदिक ग्रन्थोंमें उपलब्ध होती है।

बुद्धने ग्रस लिया

बुद्धने इस चली आती हुई विचार परम्पराको उध्वस्त कर दिया। इसी लिये बुद्धको तत्कालीन जनता अवैदिक वेदमत-खण्डनकर्ता मानती थी। किन्तु आज तो वे बौद्ध विचार ही हमारे आदर्श बन गये हैं।

किन्तु विश्वको सच्चिदानन्द स्वरूप माननेवालों-का विश्वको दुःखमय माननेवालोंसे संमिश्रण करनेकी स्थिति उत्पन्न हुई और यही कारण हुआ जिससे कि वैदिकधर्मने आत्मनाश कर लिया और लगभग उस बुद्धधर्मको आत्मसात् कर लिया। इस कारण विश्व विषयक हिन्दुओंका दृष्टिकोण निर्वाणपर केन्द्रित हो गया और ऐहिक जगत्से वे उदासीन हो गये।

साधु सन्तोंके साहित्यमें ' जो जो दिखाई देता है वह सब परमेश्वरका स्वरूप है ' इस प्रकारके विचार मिलते हैं और गर्भावस्थाका भयंकर दुःखमय वर्णन भी मिलता है। किन्तु यहाँ कोई भी यह नहीं विचार करता कि— यदि जो जो दिखाई देता है वह सब ईश्वरका स्वरूप है तो गर्भमें अवस्थित जीव भी तो परमेश्वरका स्वरूप है। तब फिर तत्सम्बन्धि इस प्रकारकी दुःखमय भावना किस लिये? किन्तु बुद्धके असम्बद्ध विचारोंको आत्मसात् करनेके पश्चात् इतना धैर्य कौन दिखा सकेगा?

बुद्ध विचारधाराको स्वीकार कर लेनेके पश्चात् हिन्दुओंमें *वीरवृत्ति धारणकर उठनेका सामर्थ्य पहिलेके समान* रहा ही नहीं और जबतक यह विचारधारा अस्तित्वमें है तबतक यही स्थिति रहेगी। 'सर्व दुःखमयं' माननेवाले संसारके व्यवहारोंको आनन्दमय किस प्रकार बना सकते हैं? आज भी यही हो रहा है और यह विचार-सरणी जबतक विद्यमान है तबतक यही होता रहेगा। विचारही विश्वपर शासन करते हैं।

रामायण-महाभारतका महत्व

हिन्दुसमाजमें बीच बीचमें छत्रपति शिवाजी महाराज जैसे लोकोत्तर पुरुष उत्पन्न होते रहे हैं। इसका कारण यह है कि रामायण-महाभारत जैसे ग्रन्थोंकी छाप हिन्दु-ओंपर अभी है। किन्तु वर्तमान पीढीमें वह समाप्त होती जारही है, इसे भुलाया नहीं जा सकता। रामायण और महाभारतमें भी बौद्धमतका प्रवेश हुआ है, तथापि मूल की तेजस्विता उसमें रक्षित है एवं वह आज भी कम प्रभावशाली नहीं है। इसलिये आजका यदि कोई हमारा मुख्य कर्तव्य हो सकता है तो वह यह कि बौद्ध विचारों-को विनष्ट कर दिया जाय और शुद्ध वैदिक धर्मके विचार जागृत किये जांय। ऐसा करनेपरही हिन्दुसमाजका उद्धार संभव है। यदि

भारतीय संस्कृतिद्वारा संसारका उद्धार होना होगा तो वह बौद्ध विचारधारासे न होकर वैदिक ऋषियोंकी विचारधारासे ही होगा। यही स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराजने कहा है तथा योगी अरविन्दके भी यही विचार हैं। इन विचारोंकी ओर ध्यान न देना आत्मनाशके समान होगा।

हमने जब जब भी संमिश्रण करनेका प्रयत्न किया तब तब दूसरोंने अपना आग्रह नहीं छोडा। उस समय यह बराबर होता रहा कि हमने अपनापना छोड दिया। इस कारण बौद्ध, जैन और मुसलमानोंके साथ हुए संघर्षमें हम अपने तत्वोंको छोडते चले आये। आज भी हमें 'क्षणभङ्गुर संसार' कहनेपर भला मालूम होता है। 'संसार असार' कहनेपर कृतकृत्यताका अनुभव होता है और अब तो 'दो दिनोंकी दुनिया' हमारे नवयुवक भी कहने लगे हैं। किन्तु 'भूयश्च शरदः शतात्' 'अदीनाः *स्याम शरदः शतं*' कहते हुए आज उनकी जिह्वा लड-खडाती है !! इन सबका कारण संमिश्रण ही है।

धरती पर स्वर्ग

बुद्ध पूर्व समयमें ऋषियोंकी दृष्टि दृश्यमान इस विश्व की ओर थी। यहींपर स्वर्ग निर्माण करनेकी इनकी कल्पना थी। 'समुद्र पर्यतायाः पृथिव्याः एकराट्' सागरतक विस्तीर्ण पृथिवीका एक शासक हो और वह आर्यशासन पद्धतिसे राज्य करे, इस प्रकारकी उनकी घोषणा थी। आज ब्राह्मणोंमें वह परिपाठी मात्र चली आरही है कि मन्त्रपुष्पोंके समय वे बडी जोरसे चिल्ला-कर उपर्युक्त घोषणा दुहरा देते हैं। किन्तु हम क्या बोल रहे हैं, इसका भान भी उन्हें नहीं रहता! यह है आजकी परिस्थिति। प्रत्येक मांगलिक अवसर पर मन्त्रपुष्पके समय 'समुद्रवलयांकित पृथिवीका एक आर्य राजा' यह महत्वाकांक्षा क्या केवल चिल्लाकर कह देने भरके लिये है अथवा उसकेकभी अस्तित्वमें आनेकी भी सम्भावना है? मन्त्रपुष्पावसरके ये मन्त्र राजकीय महत्व रखते हैं। आजके ब्राह्मण, वैदिक मन्त्रोच्चार करनेवाले ब्राह्मण-राजनी-तिसे निवृत्त होगये हैं और केवल देवताके सन्मुख चिल्लाना मात्र ही उनका धर्म रह गया है। किन्तु वैदिक समयके ऋषि, जिन्होंने उन मन्त्रोंका सर्व प्रथम उच्चारण किया, उनके हाथमें विश्वकी राजनीति थी। आज जिस प्रकारसे राष्ट्रसंघके सदस्य 'समस्त विश्वका एक छत्र राज्य' निर्माण करनेकी महत्वाकांक्षा रखते हैं, उस प्रकार वैदिक कालके ऋषि इससे भी अधिक पवित्र राज्यशासन चलाते थे। इस प्रकारके राजनीतिज्ञ ऋषियोंने समुद्रपर्यंत समस्त पृथ्वीका एक आर्यराजा बनानेकी घोषणा व्यक्त की। वह भावना उस समय जीवित-जाग्रत थी, किन्तु आज वह समाप्त हो चुकी है, क्योंकि हमारी दृष्टितो निर्वाण की ओर जो लगी है। उस समय वे लोग यहाँपर स्वर्ग बनानेमें व्यस्त थे।

विश्वशान्ति

ऋषियोंकी दूसरी एक इसी प्रकारकी घोषणा है और वह है 'शान्तिः शान्तिःशान्तिः'। यह छोटीसी है; किन्तु इस

घोषणामें कितना व्यापक अर्थ है यह देखनेयोग्य है। इन तीन शान्तियोंका अर्थ यह है कि 'हमें वैयक्तिक शान्ति स्थापित करनी है, राष्ट्रमें शान्ति स्थापित करनी है और इसी प्रकार विश्वमें भी शान्ति स्थापित करनीहै।' हमारा ध्येय मूलतः विश्वशान्ति स्थापित करना है। ऐसा ध्येय विश्वको दुःखमय माननेवाले रखना चाहेंगे अथवा विश्वको स्वर्गधाम बनानेकी इच्छा रखनेवाले ?

इसी प्रकार यह भी एक विचारणीय प्रश्न है कि यह ध्येय राजनीतिको अपने आधीन रखनेवाले सिद्ध कर सकेंगे अथवा राजनीतिसे अलिप्त रहनेवाले ? व्यक्तिमें, राष्ट्रमें तथा विश्वमें यदि शान्ति स्थापित करनी हो तो हमारे हाथोंमें किसी एक राष्ट्रकी तो सत्ता रहनी चाहिये। विश्वशान्ति एक राष्ट्रान्तरीय (International question) प्रश्न है। किसी राष्ट्रके सत्ताधीश ही इस ध्येयको प्रभावशाली रूपमें पूर्ण कर सकते हैं। आज राष्ट्रान्तरीय समस्याओंके विषयमें राष्ट्रसंघके लोग ही कुछ बोल व कर सकते हैं। अतः समुद्र पर्यन्त पृथिवीका एक शासन करनेकी कल्पना जो पूर्ण कर सकते हैं वे ही इन तीनों शान्तियोंका उच्चारण करनेका अधिकार रखते हैं।

१— समुद्र पर्यन्त पृथिवीका एक आर्य शासक

२— व्यक्ति, राष्ट्र व विश्वमें हम शान्ति स्थापन करेंगे।

ये दोनों घोषणायें राष्ट्रीय महत्व रखती हैं और जिस समय ऋषियोंके हाथमें तत्कालीन विश्वकी *राजनीति थी तथा शतरंजके प्यादोंकी तरह* भूमण्डलके राजाओंको चलानेका सामर्थ्य जिन ऋषियोंमें था उनकी यह घोषणा है।

आजके ब्राह्मण दर्भ एवं तिलके अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानते। इस प्रकारके लोग उपर्युक्त घोषणा केवल चिल्ला चिल्लाकर बोलना जानते हैं। किन्तु इस कारण उसे निरर्थक सिद्ध नहीं किया जा सकता। यह सत्य है कि जब यह घोषणा की जाती थी उस समय उच्चारण करनेवालोंमें जो सामर्थ्य था वह आज नहीं रहा, किन्तु जिस समय जीवित राजनीतिज्ञोंने इसका उच्चारण किया उस समय उनमें जीवितावस्थाका जो ओज था वह आज भी देखनेवालेको दिखाई दे सकता है।

अपनी संस्कृतिके विषयमें विचार करते समय इस जीवित-जाग्रतावस्थाकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। हमें अपनी संस्कृतिमें जिस जागृतिके दर्शन करने हैं वह राजनैतिक जागृति है। सैकडों वर्षोंतक भारतीय जनता पराधीनताके राजनैतिक वातावरणमें रही। आज वह स्वतन्त्र हुई है। इसलिये उन्हे इन घोषणाओंका विचार राजनैतिक दृष्टिसे करना चाहिये। तभी हमारी संस्कृति किस प्रकारकी है, इसका पता लग सकता है।
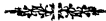
पुस्तक परिचय

ब्रह्मविद्या

लेखक- श्री स्वामी कृष्णानन्दजी सरस्वती, बी. ए., बी. टी.

प्रकाशक-विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान मुद्रण व प्रकाशन मंडल, साधुआश्रम; होशियारपुर

मूल्य- ६) रु० पृष्ठसंख्या २६०

यह ग्रन्थ सर्वदानन्द-विश्व-ग्रन्थमालाका प्रथम ग्रन्थ है। सम्पूर्ण पुस्तक तीन खण्डोंमें विभक्त की गई है। प्रथम खण्डमें तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्यायमें 'मनुष्यके जीवनके लक्ष्य' पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्यायमें 'प्रमाण विमर्श' शीर्षकके अन्तर्गत ३६ मुद्दों-पर लिखा गया है। तीसरे अध्यायमें 'गुरु' के विषयमें विचार हुआ है। द्वितीय खण्डमें आठ अध्याय हैं; जिनमें क्रमशः १- शास्त्रशिक्षा अधिकार, २- साधन चतुष्टय (विवेक वैराग्य) ३- शम-दम, ४- उपरति ५-तितिक्षा ६- श्रद्धा, ७-समाधान तथा मुमुक्षा विषयोंपर प्रकाश डाला गया है। तृतीय खण्डमें पांच अध्याय हैं; जिनके शीर्षक क्रमशः १- कर्मका रहस्य, २- वैराग्य, ३- योग-भक्ति-निदिध्यासन, ४- श्रवण तथा मनन (तर्क) हैं।

आवश्यक सूचियोंके कारण ग्रन्थमें सम्पूर्णता आगई है। मुद्रण शुद्ध एवं आकर्षक बन पाया है।

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानका यह कार्य आर्य जगत्के लिये विशेषतः अभिनन्दनीय है। इस संस्थानका गठन व्यापक बनानेका यत्न हुआ है। हम चाहते हैं कि ऐसे आरम्भोंको अधिकसे अधिक सफलता प्राप्त हो।

भारतकी अध्यात्म मूलक संस्कृति
अर्थात्
जाग्रत जीवन (भाग १)

लेखक- श्री रामावतारजी विद्याभास्कर

प्रकाशक- बुद्धि सेवाश्रम पो० रतनगढ़, जि० बिजनौर (उत्तर प्रदेश) मूल्य- ३) रु० पृष्ठ संख्या ३००

इस ग्रन्थके विद्वान् लेखक भारतके गिने चुने मौलिक लेखकोंमेंसे एक हैं। विचारोंकी मौलिकताके साथ साथ विषय प्रतिपादन-शैली भी उनकी अपनी, किन्तु प्रभावी है। गम्भीर एवं सूक्ष्म विचार भी सरलताके साथ व्यक्त हुए हैं, इसे भाषाकी विशेषता ही कहना चाहिये। सबसे बड़ी विशेषता जो इस ग्रन्थमें पाठकोंको मिलेगी, वह है, 'एक भी वाक्य किसी दूसरे ग्रन्थसे उधार नहीं लिया गया है। इसका प्रत्येक वाक्य अनुभव--समर्थित तथा मौलिक है। इसका प्रत्येक वाक्य तथा प्रकरण अपनी कोई न कोई विशेषता और मौलिकता लेकर ही ग्रन्थाकारमें लिया गया है।'

बुद्धि सेवाश्रमके संचालकके शब्दोंमें ही हम भी यह कहना चाहते हैं कि 'इसकी भाषा पाठकके हतबुद्ध हृदय--पर तत्काल चोट करनेवाली तथा उसे कर्तव्यकी दिशा सुझाकर उसमें कर्तव्य--बुद्धि जगानेवाली है। यदि इसे अवसर दिया जाय तो यह विद्यार्थियों और अध्यापकोंको सतत सावधान रहनेकी प्रेरणा दे सकती है। यह पुस्तक इस कर्तव्यहीनतावाले युगमें, देशके मानसिक अवसाद रूपी रोगकी चिकित्साके रूपमें विश्व--विद्यालयोंकी पाठ--विधिमें तत्काल आने योग्य है।'

उपदेश मञ्जरी

प्रकाशक— जगतरामजी आर्य

आर्य प्रकाशन मण्डल, लाजपतराय मार्कीट, दिल्ली

भूमिका लेखक- हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज

मूल्य- २) रु० पृष्ठ संख्या २२४

इस पुस्तकमें महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराजके १५ व्याख्यानोंको संगृहीत किया गया है। ये व्याख्यान उन्होंने ४ से १८ जुलाई, सन् १८७५ ई० में भिडेका बाडा, बुधवार पेठ पूनामें दिये थे। उपदेश मञ्जरी पुस्तकका संस्करण इससे पूर्व भी प्रकाशित हो चुका है।

व्याख्यानोंकी विषय सूची इस प्रकार है—

१- ईश्वर सिद्धि, २-- ईश्वर सिद्धि विषयपर वादविवाद ३-- धर्माधर्म, ४-- धर्माधर्म विषयपर शंका समाधान, ५-- वेद विषयक, ६-- जन्म विषयक, ७-- यज्ञ और संस्कार, ८ से १३ तक इतिहास विषयक, १४— नित्यकर्म और मुक्ति, १५-- स्वयं कथित जीवन चरित्र

हमें आशा है कि इस पुस्तकका प्रचार अत्यधिक होगा। क्योंकि महर्षिके जीवनके अत्यन्त निकट पहुँचनेका आनन्द इसे पढ़कर प्राप्त होता है। पुस्तक प्रत्येक आर्य परिवारके लिये संग्रहणीय है।

राजयोगके मूलतत्व और उनका अभ्यास

[प्रकरण ८ वाँ]

लेखक — **श्री. राजाराम सखाराम भागवत**, एम्. ए.
अनुवादक— **श्री. महेशचन्द्रशास्त्री**, विद्याभास्कर

योगसिद्धि

योगी लोग जिन शक्तियोंकी सहायतासे अलौकिक बातें कर सकते हैं उन्हे योग-सिद्धि कहा जाता है। इस प्रकरणमें उन्हींका विचार करना है।

योगकी सिद्धियाँ सत्य हैं या असत्य ? इस प्रश्नकी चर्चा करनेका अवकाश इस पुस्तकमें नहीं है। उसके लिये प्रमाणोंकी आवश्यकता है। जिसे ऐसी जिज्ञासा होगी उसे उन प्रमाणोंकी प्राप्ति बहुत कठिन नहीं है। जमीनमें स्वयंको गाड लेना, आगपर चलना, नाडी बंद करना, अपने कान हिलाना, दूसरेके मनके विचारोंको जान लेना, पार-दर्शक पदार्थ न होते हुए भी उसमेंसे देख लेना, दूरीकी बातोंको जान लेना जैसी अनेक बातें कभी कभी प्रत्यक्ष रूपसे हमें दिखाई देती हैं। जिन्हे ऐसी बातोंके विषयमें संशय है, उन्हे चाहिये कि वे स्वयं ऐसी बातें देखनेका प्रयत्न करें।

योगसिद्धि प्राप्त होजानेपर योगी जिन अलौकिक बातोंको कर सकता है, वे सचमुच निसर्गके अनुरूप ही होती हैं। उत्क्रान्तिक्रममें ये योग सिद्धियाँ सभी को प्राप्त होनी हैं। योग शास्त्रका अभिप्राय यह है कि उसके द्वारा उत्क्रान्ति मार्ग पर तेजीसे चलकर कलकी बातें आज ही हम प्राप्त कर लें। अर्थात् जो सिद्धियाँ योगीको प्रयत्न करनेपर आज साध्य होती हैं वे यदि भविष्यमें सम्पूर्ण मानव जातिको स्वाभाविक रूपसे मिलनी हों तो क्वचित् कदाचित् किसी के लिये वे आज भी निसर्गदत्त हो सकती हैं। निसर्गतः ऐसे सिद्धि-प्राप्त मनुष्य * कभी भी दिखाई पड जाते हैं। बहुतसोंको ऐसा लगता है कि सिद्धि याने सृष्टि-नियम-विरुद्ध कुछ अलौकिक प्रकारकी बातें। किन्तु ऐसा समझना गलत है। सृष्टिके नियमोंके विरुद्ध कोई भी बात नहीं होती। 'प्रत्येक जड पदार्थ आकाशसे पृथ्वीपर नीचे पडता है,' यह गुरुत्वाकर्षण का नियम है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि जमीनपर पडी हुई सूई लोह-चुंबकसे ऊपर नहीं उठाई जासकती। पृथ्वी सूईको नीचेकी ओर खींचेगी, लोहचुंबक ऊपर उठायेगा। यदि लोहचुंबककी शक्ति अधिक हुई तो सूई ऊपरकी ओर खींच ली जायगी। पक्षी आकाशमें उडते हैं, इसका

---

* जो पुस्तकीय प्रमाण चाहते हैं वे पॉल ब्रंटन कृत The Search in Secret India, सर वुइल्यम क्रुक्स कृत Researches in the Phenomena of Spiritualism श्रेंक नॉट्रासिंक कृत The Phenomena of Materialisation, जे. बी न्हाइन कृत The New Frontiers of the mind, रिशे कृत Thirty years of Psychical Research तथा Our Sixth Sense डॉ. ऑस्टी कृत Supernormal Faculties of Man, बॅरेट कृत एवं बेस्टरमान कृत The Divining Rod इत्यादि पुस्तकें पढें। सिद्धियोंके अस्तित्वका यथेष्ट प्रमाण उन्हे इसमें प्राप्त हो सकता है। उसमें जो सिद्धियाँ हैं वे योगाभ्याससे प्राप्त की हुई न होकर जन्मसे ही किन्हीको प्राप्त रहती हैं। किन्ही व्यक्तियोंको जन्मजात सिद्धियाँ प्राप्त रहती हैं, यह बात पातञ्जल सूत्र ४, १ में लिखी हैं। ऐसे उदाहरणोंका पता और छानबीन Psychycal Research नामक क्षेत्रमें प्रसिद्ध शास्त्रज्ञोंने की है। सिद्धियाँ झूठी नहीं हैं, यह दिखानेके लिये उन शास्त्रज्ञोंके अनेक अनुभव इस प्रकरणकी टिप्पणियोंमें देनेकी योजना हमने की है। योगशास्त्र सीखकर प्राप्त की गई सिद्धियोंके ये अनुभव नहीं हैं, अपितु सामान्य मनुष्यके सहजतया प्राप्त सिद्धिके ये अनुभव हैं और केवल मात्र सिद्धियोंके प्रमाणरूपमें यहां इनका उल्लेख है, पाठक यह न भूलें।

यह अर्थ नहीं है कि वे गुरुत्वाकर्षणके नियमको असत्य सिद्ध करते हैं। यदि पक्षी पंख हिलाना बंद कर देगा तो गुरुत्वाकर्षण उसे जमीनकी तरफ अवश्य खींचेगा। सृष्टि नियमके विरुद्ध कोई भी कुछ भी नहीं कर सकता। परन्तु ज्ञानी मनुष्य एक सृष्टि नियमके विरुद्ध दूसरे सृष्टि-नियमकी योजना करके पहलेका काम बंद कर देता है और इस तरह इष्ट बातें कर लेता है। जिसे लोह-चुम्बकके नियमोंका पता नहीं है, वह लोह चुम्बकके द्वारा उठाई गई सूईको देखकर यह समझ सकता है कि वह क्रिया सृष्टि-नियमके विरुद्ध है। किन्तु लोह चुम्बकके नियम समझमें आजानेपर उसमें सृष्टि विरुद्ध बात कुछ भी नहीं है, यह बात उसकी समझमें आजायेगी। सृष्टिके सारे नियम अभीतक मनुष्यकी समझमें नहीं आसके हैं। जो नियम हम समझ नहीं सके उसका लाभ उठाकर यदि किसी मनुष्यने कोई बात की तो वह 'चमत्कार है' ऐसा हम कहेंगे। बटन दबाकर बिजलीकी घण्टी बजाना या बिजलीके दीपक जलाना आदि बातें विद्युत् शास्त्रके अनुसार ही होतीं हैं। किन्तु जंगली मनुष्यको वे बातें अलौकिक सी लगती है। क्यों कि विद्युत् शास्त्रसे वह पूर्णतः अनभिज्ञ रहता है। सृष्टीके जो नियम साधारण मनुष्योंको मालूम नहीं हैं उनका अभ्यास एकआध मनुष्य करे तो औरोंके लिये अशक्य लगनेवाले चमत्कार वह कर सकता है। रेडियोके द्वारा आज हम एक स्थानका गाना दूसरे स्थानपर सुन सकते हैं। क्ष किरणोंद्वारा आज घन पदार्थों के आरपार देखा जा सकता है। ये बातें लोगोंके सामने जब आई तो उन्हें वह चमत्कार मालूम हुआ। किन्तु बादमें किन नियमोंसे ये बातें होती हैं इसका विवरण जब शास्त्रज्ञोंने संसारके आगे रक्खा तब लोगोंमें उसके विषयमें चमत्कारिताकी भावना न रही। यही मान लें कि योग शास्त्र सीखकर सृष्टिके कुछ और नियम मनुष्य जान ले और रेडियोकी तरह दूरका गाना सुननेकी शक्ति प्राप्त कर ले अथवा क्ष किरणोंके समान दिवारके उसपारके दृश्य देख सके तो ऐसा सिद्ध नहीं हो जाता कि सृष्टि-नियम बन्द पड गये हैं। जंगली मनुष्यके लिये असम्भव एवं अज्ञात बातें आजका शास्त्रज्ञ कर दिखाता है; क्यों कि शास्त्रज्ञमें सृष्टि सम्बन्धि ज्ञान अधिक रहता है। शास्त्रज्ञों-को असम्भव प्रतीत होनेवाली बातें आजका योगी कर दिखाता है, क्योंकि उसे शास्त्रज्ञकी अपेक्षा भी अधिक सृष्टि-ज्ञान रहता है।

नीतिमत्ताका प्रश्न

इससे यह स्पष्टतः सिद्ध हो जाता है कि योग-सिद्धिका नीतिसे सम्बन्ध नहीं हो सकता। शास्त्रज्ञ शास्त्रीय ज्ञानसे सम्पन्न रहता है। वह दुर्बीन, सूक्ष्मदर्शक, स्पेक्ट्रोस्कोप, थर्मोपाईल, कुतुबनुमा, इत्यादि अनेक प्रकारके उपकरण लेकर सृष्टिज्ञान प्राप्त करता है तथा रोगोंके कीटाणु मंगलके ऊपरकी नहरें, भाफके इंजन, बिजलीकी घण्टा आदिका अन्वेषण करता है। योग सिद्धियोंका सम्पादन करनेवाले अपने अन्तरङ्गमें सूक्ष्मदृष्टि, दूरश्रवण, सूक्ष्मसृष्टि संचार, भविष्य दृष्टि आदि शक्तियोंका विकास कर लेते हैं। इन शक्तियोंकी सहायतासे मृत्युके क्षणोंमें क्या होता है। मनुष्यका वासना-शरीर किस आकारका रहता है, देव-देवता होते हैं या नहीं आदि अनेक बातोंका अन्वेषण वह करता है। मंगलके ऊपरकी रेखा दुर्बीनसे देखनेवाला ज्योतिःशास्त्रज्ञ तथा वासनाशरीरकी हलचलें सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेवाला योगी इनके प्रकार तत्वतः एकसे ही हैं। मंगल-स्थित नहरें (रेखायें) देखनेवाला ज्योतिषी दुर्बीनसे निरीक्षण करनेमें दक्ष होना आवश्यक है। किन्तु वह मंगलस्थ नहरें देख सकता है, इसलिये नैतिक आचरणमें भी वह शुद्ध ही होगा, ऐसा नहीं है। सम्भव है वह शराबी हो, सट्टेबाज हो, परस्त्रीगामी हो और झूठ बोल-नेवाला हो। मंगलस्थ रेषाओंका अन्वेषण करना और एक पत्नीव्रतसे रहना इनका आपसमें कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी न्यायसे सूक्ष्म दृष्टिका उपयोग करके मृत्युके क्षणोंमें कौनसी प्रक्रिया होती है यह देखनेवाला योगी नैतिक दृष्टिसे आचारवान् होगा ही, ऐसा नहीं है। किसी-से पैसे उधार लेकर वह लौटा ही देगा या कोर्टमें फरियाद करनेपर वह वहाँ झूठ नहीं बोलेगा, ऐसी बात नहीं है। अच्छी तरह मोटर चलानेवाला शोफर या अच्छा फोटो-ग्राफर अपने अपने विषयके अच्छे जानकार होंगे मोटर या फोटोग्राफीसे सम्बन्धित प्रश्नों का वे पूर्णतासे उत्तर देंगे। किन्तु हिन्दू धर्म एवं अन्य धर्मोंमें किन किन बातोंका

सुधार करना आवश्यक है ? इस बातका उत्तर वे नहीं दे सकेंगे। इसी प्रकार वे अपने आचरणोंमें सच्चे होंगे या नहीं इसका निर्णय भी कठिन है। ठीक इसी तरह मृत्युके समय क्या क्या होता है, इस बातको सूक्ष्म दृष्टिसे प्रत्यक्ष देख सकनेवाला योगी मृत्यु-विषयक जानकारी बिलकुल ठीक ठीक बता सकेगा। किन्तु वह सचाईसे व्यवहार करनेवाला तथा निर्व्यसनी होगा ही ऐसा नियम नहीं है तथा यदि वह हिन्दूधर्म या अन्यधर्म सुधारनेके विषयमें कोई बात कहे तो उसे निश्चित रूपसे बुद्धिमत्तापूर्ण ही नहीं माना जा सकता।

योगमार्ग द्वारा मनुष्य जब बहुत आगे बढ जाता है और बहुत उच्च भूमिका पर सिद्धि प्राप्त कर लेता है; उस समय यह प्रश्न नहीं रहता। उस समय वह ईश्वरके स्वरूपके अत्यन्त निकट आ चुकता है। ईश्वरी गुण, ईश्वरी चातुर्य, आदि उसके स्वभावमें आचुकते हैं। इस प्रकारके उत्क्रान्तिमार्गमें बहुत आगे बढे हुए मनुष्योंको छोड दिया जाय और सामान्य कोटिकी सिद्धियोंका ही विचार किया जाय तो सिद्धियोंका या आचारका (या चातुर्यका) कोई सम्बन्ध नहीं है; इसे न भूलना चाहिये। सामान्यतः जो सिद्धियाँ हमें दिखाई पडती हैं, वे भूलोकके एक पायरी ऊपर जो भुवर्लोक है, उसीसे प्रायः सम्बन्धित रहती हैं। चांगदेव अनेक वर्षोंतक जीवित रह सके और शेरपर बैठ-कर सर्पका चाबुक लेकर पर्यटन कर सके इसलिये संसारको वे बुद्धिमत्ताकी, सदाचारकी और मानवकी परमोच्च अवस्थाकी शिक्षा दे सकते हैं, ऐसा नहीं है। ज्ञानेश्वर आदि चारों भाइयोंने 'जैसेको तैसा' इस न्यायका आश्रय लेकर दिवार चलाई और चांगदेवकी आँखोंमें अंजन डाला। इस बातका रहस्य अब पाठकोंके ध्यानमें आजायगा।

सृष्टि-नियममें नीति अनीतिका कोई सम्बन्ध न होनेके कारण नीतिमान या अनीतिमान् दोनों ही प्रकारके व्यक्तियों को सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जो दृढताके साथ प्रयत्न करेगा, उसकी सृष्टिशास्त्रमें गति हो सकती है; फिर चाहे वह मनुष्य सदाचारी हो या दुराचारी हो। रसायनशास्त्र-का जिसने अच्छा अभ्यास किया होगा वह आवश्यक उपकरण संग्रह करके हाइड्रोजन वायु तैयार कर सकता है। उस प्रयोगमें वह जस्तके टुकडे पर सल्फ्यूरिक एसिड उंडेल दे तो वह वायु अवश्यमेव बाहर आजायेगा। ॲसिड उंडेलनेवाला राम है या रावण है, एकपत्नीव्रत का पालन करनेवाला है या दूसरेकी स्त्री चोरकर भगा लेजानेवाला है, इन बातोंका विचार रसायन शास्त्र नहीं करता। बहुत उच्च भूमिकाकी बात छोड दें तो ऐसा कहा जा सकता है कि सिद्धियाँ प्राप्त करना, यह केवल अभ्यास एवं सतत उद्योगका प्रश्न है तथा जो मनुष्य इसके लिये आवश्यक प्रयत्न करेगा उसे वे मिल जाँयगी। इसी लिये योगशास्त्र स्पष्ट रूपसे सब के सामने रक्खा नहीं जाता। पिस्तौल, कारतुस, डायना माइट, आर्सेनिक आदि पदार्थ चाहे जिस किसीको बाजारमें नहीं मिल जाते। कानूनन जनता के हितके लिये इस विषयमें कुछ शर्तें निश्चित रहती हैं। इसीलिये योगशास्त्र सबके लिये साधारण रूपमें सिखाया नहीं जाता।

योगशास्त्रका विचार करते समय उसका मूल्यांकन किसी भी प्रकार हमें कम नहीं करना चाहिये। सिद्धि प्राप्त होनेपर जो बातें पहिले अदृश्य रहती हैं वे दिखाई देने लगती हैं। जैसे यदि मनुष्यको मरणोत्तर स्थिति प्रत्यक्ष दिखाई दे, भुवर्लोक; स्वर्गलोक दिखाई दे, मनुष्य जो पुनः पुनः जन्म लेनेकी क्रिया करता है वह दिखाई दे तो उसका जडवाद नष्टप्राय हो जायेगा। मृत्युके बाद सबकुछ समाप्त हो जाता है, ये विचार उसे पट नहीं सकते। प्रत्येक जन्ममें मनुष्यका गुण विकास होता रहता है, ऐसा उसका दृढ विश्वास हो जायेगा। और उसके जीवनको एक अच्छे प्रकारकी आदत लग जायेगी। यदि ऐसा मनुष्य वक्ता अथवा लेखक हुआ तो मनुष्योंके जीवन-पर उसके चरित्रका तथा बोलनेका बहुत अधिक परिणाम होगा। यदि ऐसा हुआ तो वह मनुष्य समाजके लिये अत्यन्त उपकारी सिद्ध होगा। इससे ज्ञात होता है कि समाज और व्यक्ति को योग सिद्धियोंका बहुत सा लाभ हो सकता है।

सिद्धि और समझदारी

किन्तु अधिक वस्तुओंके दर्शनमात्रसे ही मनुष्य समझ-दार होजाता है, ऐसी बात नहीं है। चातुर्य प्राप्त करनेके

लिये एक विशिष्ट प्रकारकी योग्यता आवश्यक रहती है। यदि किसीकी आँखमें शार्टसाइड या मन्ददृष्टि नामक दोष हो तो यह आँखोंका वैगुण्य माना जावेगा। ऐसे व्यक्तिको आसपास बीस फूट तकके पदार्थ दिखाई देते हैं; किन्तु उससे आगेके दिखाई नहीं देते। यदि यह मनुष्य किसी सभामें जाय तो अपने आसपासके बीस फूट तकके अन्तरके पदार्थों या मनुष्योंको स्पष्ट देख सकता है और पहचान सकता है; किन्तु उसे और परेके पदार्थ दिखाई नहीं देंगे। दूरीपर बैठे हुवे मित्रको वह देख नहीं सकेगा। ऐसे मनुष्यको यदि बगीचेमें ले जाया जावे तो पासके वृक्ष दिखलाई देंगे, दूरके दिखाई नहीं देंगे। कल्पना कीजिये कि एक चश्मा खरीद लेनेपर उस मनुष्यका वैगुण्य नष्ट हो जायगा और जिस बगीचेमें उसे पचास पौधे दिखाई देते थे वहाँ अब उसे सौ दिखाई देने लगेंगे; सभामें कई गुना अधिक लोग दिखाई देंगे; किन्तु क्या उसके कारण वह अधिक बुद्धिमान्, अधिक ज्ञानी बन गया, ऐसा माना जायेगा ? 'कदापि नहीं' योग-सिद्धि-प्राप्त अनेक मनुष्य इसी उदाहरणके अनुरूप होते हैं। औरोंकी अपेक्षा उन्हें अधिक पदार्थ दिखाई देते हैं किन्तु उसके कारण वे समझदार बन जाते हैं; ऐसी बात नहीं है। समझदारी आनेके लिये मनुष्यमें पहलेकी योग्यता एवं तैयारी आवश्यक रहती है। केवल भौतिक बातें मनुष्यको समझदारीकी शिक्षा दे सकती हैं।

योगशास्त्रके विषयमें सारे महत्वपूर्ण ग्रन्थ अतिप्राचीन कालमें लिखे गये हैं। आजकल भौतिक शास्त्रका जो एक नया ज्ञान-क्षेत्र जनताके सम्मुख है, वह प्राचीन कालमें अस्तित्वमें नहीं था। भौतिक शास्त्रमें सृष्टिका अवलोकन, निरीक्षण तथा प्रयोग किया जाता है। इसलिये सृष्टिमें क्या क्या बातें (Facts) हो रही हैं, वस्तु-स्थिति क्या है, किस प्रकारकी प्रक्रियायें सृष्टिमें जारी रहती हैं, यह सब समझमें आजाता है। भौतिक शास्त्रमें ये सब बातें सुव्यवस्थित रूपसे लिखी गई हैं और उसी जान-कारीके अनुसार सृष्टि-नियम निश्चित किये जाते हैं। भौतिक शास्त्रकी बातें चाहे जिसतरह संगृहीत की हुई नहीं रहतीं। उसकी रचना किन्हीं तत्वोंके मान्य करनेके बाद व्यवस्थितरूपसे की जाती है। सृष्टिकी बातों एवं प्रक्रियाओंके सम्बन्धमें व्यवस्थितरूपसे रचा गया जो ज्ञान है वही साइन्स या शास्त्र है, ऐसी व्याख्या की जासकती है। पुराने समयमें सृष्टिके पदार्थोंका अवलोकन करके, उसके द्वारा एक सुव्यवस्थित ज्ञानक्षेत्र निर्माण करनेकी प्रणाली जनतामें बहुत अधिक प्रचलित न थी। अतएव प्राचीन योगग्रन्थोंमें योग सिद्धियोंका विषय आजके लोगोंको अच्छी प्रकार समझमें आजाय ऐसी सुसंगत रीतिसे भौतिक शास्त्रके समान रचा गया दृष्टिगत नहीं होता। उसे यहाँपर नवीन रीतिसे प्रस्तुत करना आवश्यक है।

मनुष्यके अनेक शरीर हुआ करते हैं और प्रत्येक शरीर अपने आसपास रहनेवाले एक लोकमें व्यवहार करके ज्ञान प्राप्त कर लेता है। यह बात इस पुस्तकमें पहले विस्तारसे कही जा चुकी है। प्रत्येक शरीरके इन्द्रियाँ रह-ती हैं और शरीरके बहिर्मुख रहते हुए (यदि उसकी उतनी तैयारी होगी तो) उन इन्द्रियोंके द्वारा वह आस-पासकी सृष्टिका अवलोकन करता है और वहाँ क्रिया भी-करता है। मनुष्यके स्थूल शरीरमें पांच कर्मेन्द्रियाँ हुआ करती हैं। छोटे बालकमें इन इन्द्रियोंका उपयोग करनेकी शक्ति नहीं रहती जब वह बडा होजाता है तो वह शक्ति उसमें आजाती है और वह इन्द्रियद्वारा भूलोककी सारी बातें देख लेता है; तथा हाथ-पैरसे भिन्न भिन्न उद्योग करने लगता है। भुवर्लोकमें उपयोगके लिये वासना शरीर रहता है और कनिष्ठस्वर्गमें मनःशरीर तथा श्रेष्ठस्वर्गमें कारणशरीर रहता है। इन तीनों शरीरोंमें इन्द्रियाँ रहा करती हैं और वे उस शरीरके भँवरोंके साथ संलग्न रहती हैं। इन्द्रिय शब्दका प्रयोग हमने यहाँ केवल सुग-मताके लिये किया है।

इससे पाठकोंको यह न समझ लेना चाहिये कि उन शरीरोंकी इन्द्रियाँ, नाक, कान, आँख, हाथ-पैरके समान होती हैं। उस शरीरके द्रव्य एक समान सर्वत्र घूमा करते हैं और इसीलिये स्थूल शरीरके समान इन्द्रियाँ उसमें रह नहीं सकती। उन इन्द्रियोंकी शक्तियाँ भी भिन्न प्रकारकी हुआ करती हैं। भुवर्लोकमें वासनाशरीरको गर्दन घुमाये बिना भी चारों ओरका दृश्य दिखाई देता है। मनः-

शरीरकी इन्द्रियोंसे जो ज्ञान-ग्रहण होता है, उसमें अनेक सूत्र एकत्रित रहते हैं। उस ज्ञान--ग्रहणमें देखना, सुनना, स्वादलेना, स्पर्श करना इत्यादि सब मिलकर मानो एक संवेदना बनकर उसका ग्रहण होता है। * स्वयं अनुभव किये बिना केवल वर्णनसे ऐसी क्रियाओंकी ठीक ठीक कल्पना नहीं की जा सकती। इन शरीरोंका जो पर्याप्त विकास कर चुकता है वह आसपासके लोककी वस्तुएँ प्रकिया एवं प्रेरणाका निरीक्षण कर सकता है। वही इन शरीरोंसे घूमफिरकर भिन्न भिन्न उद्योग कर सकता है। यह ज्ञान प्रत्येक लोकमें भिन्न शरीरसे प्राप्त किये हुए होनेके कारण प्रारम्भमें भिन्न भिन्न हिस्सोंमें विभक्त कियेसे तथा पृथक्से रहते हैं। बादमें विशेष प्रयत्नके द्वारा वे सब ध्यानमें आजाते हैं।

इस प्रकारसे मस्तिष्कमें जो ज्ञान उतारा जा सकता है, उस ज्ञानको तथा उस ज्ञानशक्तिको ' सिद्धि ' कहते हैं। यह ज्ञान पृथक् विभागमें निहित हो, मस्तिष्क-विभागमें उतारने योग्य मनुष्यकी प्रगति न हुई हो तब भी उसे ' सिद्धि ' नाम देना उचित होगा। किन्तु ' सिद्धि ' शब्द-का इस प्रकारसे उपयोग करनेकी प्रथा नहीं है। मस्तिष्क-में उतार लेनेपर और सबके सामने वह प्रकट होनेपर ही उसे सिद्धि कहते हैं। वासना शरीरसे, मनःशरीरसे तथा कारण शरीरसे यह ज्ञान प्राप्त किया हुआ होता है। कारण शरीरसे परेके शरीर (अपवादभूत व्यक्तिको छोडकर) मनुष्योंमें विकसित नहीं हुए हैं। अतः उन भूमिकाओं-पर अवस्थित सिद्धियोंका विचार बिना किये भी चल सकेगा।

सिद्धियोंके तीन विभाग

इस दृष्टिसे विचार करें तो सिद्धियोंके तीन विभाग होंगे। वासना शरीरसे प्राप्त किये गये ज्ञान तथा किये गये उद्योग यह प्रथम विभाग होगा तथा मनःशरीर एवं कारणशरीरसे प्राप्त ज्ञान और किये गये उद्योग, ये दूसरे दो विभाग होंगे। स्थूल शरीरसे मनुष्य जो उद्योग करता है और ज्ञान प्राप्त करता है उसे स्थूल शरीरकी सिद्धियाँ कहें तो वह भी उचित होगा; क्योंकि विशिष्ट शरीरसे विशिष्ट क्षेत्रमें जो उद्योग और प्रयत्नकी बातें की जाती हैं उन्हे ' सिद्धि ' कहनेमें कोई प्रत्यवाय नहीं है। इस दृश्य जगत्में स्थूल शरीरके द्वारा प्राप्त ज्ञान एवं बातोंके क्षेत्र अनन्त हैं। उसमें की व्यवस्थित जानकारी प्राप्त करनी हो तो उन सब क्षेत्रोंको खोज लेना होगा। इसी प्रकार वासनाशरीर, मनःशरीर और कारणशरीर इनमेंसे एक एककी इन्द्रियाँ बहिर्मुख करके जो ज्ञान प्राप्त हो सकता है तथा जो व्यवहार हो सकते हैं वे भी अनन्त प्रकारके होंगे, यह स्पष्ट है। अर्थात् इन तीन विभागोंकी सिद्धियाँ विस्तारपूर्वक वर्णन करना यहाँ असम्भव है। उनकी अत्यल्प कल्पना पाठकोंके सामने प्रस्तुत करनेके लिये हम अगला विवरण उपस्थित करते हैं। ॐ

वासना शरीरसे स्वतन्त्र व्यवहार कर सकनेवाला मनुष्य यदि उस कार्यमें पूर्णतः दक्ष होगा तो भुवर्लोकके

---

* देखिये डॉ. बेझंटकृत The Man and his Bodies पृ० ६९ आवृत्ति ६ तथा लेडबीटरकृत Clairvoyance पृ० १६ आवृत्ति १९३५, इसी प्रकार पातञ्जल सूत्र ३, ४७

ॐ प्रत्येक मनुष्यके प्राणमय कोष होता है, यह पहले कहा जा चुका है। वासनाशरीर, मनःशरीर और कारणशरीर इन तीन शरीरोंके आधारसे सिद्धियोंके यदि तीन मूलभूत प्रकारोंकी कल्पना करनी हो तो प्राणमय कोष-सम्बन्धि सिद्धियोंका और एक चौथा प्रकार हमने यहाँ क्यों नहीं दिया, ऐसा प्रश्न हमारे पाठकोंके सामने यहाँ उत्पन्न होगा। उसका उत्तर यह है कि इतर शरीरोंके समान प्राणमय कोष सुबुद्ध रीतिसे जीवकी उपाधिके रूपमें स्वतन्त्र व्यवहार नहीं कर सकता जड शरीरके लिये प्राण प्रवाह पहुँचाना, यही उसका मुख्य कार्य है। अर्थात् प्राणमय कोषकी सिद्धियाँ कम महत्वकी रहती हैं। इसलिये उपर्युक्त वर्गीकरणमेंसे वे छूट गई हैं। इससे पाठक यह न समझ लें कि प्राणमय कोषकी कोई भी सिद्धि अस्तित्वमें नहीं है। प्राणमय कोषमेंके सामर्थ्यका विकास किया जाय तो मनुष्यको उसकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। उन सिद्धियोंकी सहायतासे मनुष्यको विशेषतः घन पदार्थोंके आरपार देखनेकी तथा जड पदार्थ हिलानेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है।

सम्पूर्ण भागोंमें वह अनिरुद्ध संचार कर सकता है। भुवर्लोकमेंके द्रव्योंके अधिकाधिक विरल सात प्रकार होते हैं। उन सबमें वह घुमाफिरा करता है। वहाँ कभी कभी उसे अध्यात्ममार्गके अधिकारी मनुष्य मिल जाया करते हैं। सोते समय जिनके वासना शरीर भुवर्लोकमें घूमते रहते हैं ऐसे भी स्त्री-पुरुष उसे मिलते हैं। दुष्ट एवं सुष्ट मनुष्य भी उसे मिलते हैं। मृत्युके पश्चात् मनुष्य कुछ कालतक भुवर्लोकमें रहा करते हैं और फिर स्वर्गलोकमें जाते हैं। उनके स्वर्ग लोकमें जानेसे पूर्व वह उनसे मिल सकता है। भूलोकमें मनुष्य जब मरता है तब मृतशवको पीछे रखकर जीव आगे भुवर्लोकमें जाता है। भुवर्लोकसे जब वह स्वर्गलोकमें जाता है उस समय मृत वासना शरीरको वह पीछे छोड देता है। ऐसे मृत वासनाशरीर भी उसे दिखाई दे सकते हैं। प्राणियोंके वासनाशरीर भी उसे दिखाई देते हैं।

भुवर्लोकमें देवकोटिके विशिष्ट दर्जेके व्यक्ति रहा करते हैं। उसी प्रकार जो जीव अभीतक पर्याप्त उत्क्रान्ति न करनेके कारण देवकोटिमें अभीतक नहीं जासके हैं, किन्तु जो आगे जाकर देवकोटिमें प्रवेश करनेवाले हैं, (जिनके लिये अंग्रेजीमें Nature Spirits ये नाम हैं) वे भी उसे मिलते हैं। संस्कृतके यक्ष, किन्नर, गुह्यक, विद्याधर कर्णपिशाच आदि नाम सम्भवतः उन्हींकी भिन्न भिन्न जातियोंकी नामावली है। भुवर्लोकमें भिन्न भिन्न सुन्दर दृश्य होते हैं। मनुष्यके द्वारा मनमें भावना उत्पन्न करते ही, उसके वासना शरीरमेंसे भिन्न भिन्न आकृतियाँ बाहर निकल आतीं हैं। भुवर्लोकके द्रव्य लगातार हिलते रहते हैं और वहाँकी वस्तुओंके रंग तथा आकार निरन्तर बदलते रहते हैं। ये सारी बातें उसे दिखाई देती हैं।

भुवर्लोकमेंके देव देवता और अपदेव (यक्ष गन्धर्वादि) इनके साथ वह ऋणानुबन्ध सम्बन्ध जोड सकता है, और उनकी सहायतासे वह अनेक चमत्कार कर सकता है। वह वहाँपर परोपकारके अनेक कार्य भी कर सकता है। तुरतके मरे हुए तथा मृत्युके बाद क्या होता है इसका ज्ञान न होनेके कारण घबराए हुएसे अनेक मनुष्य वहाँ रहते हैं। दुर्घटनासे मरे हुए तथा उसके कारण मनसे उद्विग्न हुए हुवे भी वहाँ बहुतसे होते हैं। नासमझ भी होते हैं। उन्हे ज्ञान देना, उनका भय दूर करना सान्त्वना देना आदि अनेक स्वार्थ रहित कार्य करनेका अवसर भुवर्लोकमें बहुत रहता है। + भुवर्लोकमेंके सृष्टि--नियम समझकर उनका उपयोग करना तथा अन्य लोगोंको जो बातें आश्चर्यजनक लगती हैं, उन्हे करना, यह सब उसके लिये सम्भव है। हवामें आवाज उत्पन्न करना, हाथ बिना लगाये किसी भी वस्तुको आगे पीछे चलाना, दूरका पदार्थ ले आना, बंद की हुई पेटीमें क्या है यह देखकर बता देना, किसी वस्तुको ओझल कर देना, इत्यादि चमत्कार वह कर सकता है।

मनःशरीरकी सिद्धियाँ जिसे प्राप्त हैं और मनःशरीर विकसित तथा स्वाधीन होनेके कारण जो मनःशरीर कनिष्ठ स्वर्गमें भिन्न भिन्न प्रकारके व्यापार कर सकता है, ऐसे मनुष्य आज संसारमें बहुत थोडे हैं। प्रथम महादीक्षा के आगे गये बिना प्रायः ये बातें मनुष्यको साध्य नहीं होतीं। इस भूमिका पर मनुष्यको यहाँ वहाँ सर्वत्र आनन्दही आनन्दका अनुभव होता है। तथा दिक् एवं कालका परिमाण बदल गया है, ऐसा आभास होता है। वहाँ परिपूर्णतः प्रकाश व्याप्त हुआ दीखता है। ज्वारके समय समुद्रमें जिस प्रकार तरङ्गे उठती हैं, उसी प्रकार आनन्दकी तरङ्गे उसमें उठा करती हैं। जो इस भूमिका पर व्यवहार करता होगा उसे अध्यात्म मार्गपर बहुत आगे बढे हुए मनुष्य मिल सकते हैं। मरनेके बाद भुवर्लोकका अपना समय समाप्त करके स्वर्गलोकमें आये हुए अनन्त मृत मनुष्य वह यहाँ पर देखता है और उनकी उत्क्रान्ति यहाँपर किस प्रकारकी होती है, यह प्रत्यक्ष देख सकता है। बुरे जीव इस भूमिकापर रहते ही नहीं हैं।

+ इन सारे कार्योंकी जानकारी लेडबीटरकृत (Invisible Helpers तथा डॉ. ॲरंडेल कृत The Night Bell तथा From Visible to Invisible Helping इस पुस्तकमें देखिये।

देव कोटिका एक वर्ग (श्रेणी) इस भूमिकापर व्यवहार किया करता है। ये देव दूसरेसे बोलते समय भाषाका उपयोग नहीं करते। इनकी बोलचाल शुरु होनेपर आतिशबाजीके समान रंगबिरंगी सुन्दर शोभा आसपास दिखाई देने लगती है।

जिस योगीको कारण शरीरमें कार्य करनेकी निपुणता प्राप्त रहती है वह स्वर्गलोकके ऊपरके भागमें (श्रेष्ठ स्वर्गमें) सर्वत्र घूम फिर सकता है। यह योग्यता संसारके आजके बहुत ही थोडे लोगोंमें विद्यमान है। यहाँ द्रव्य आकार धारण नहीं कर सकता। इस भूमिकापर रहते हुए कारणशरीरसे मनुष्यको अपने पूर्वजन्मकी कथा स्मरण हो सकती है। क्योंकि सभी जन्मोंमें मनुष्यका कारणशरीर वही होनेके कारण पूर्वजन्मके स्मृति-संस्कार कारणशरीरमें संगृहीत रहते हैं। इस भूमिकापर सृष्टिका पूर्व इतिहास मनुष्य प्रत्यक्ष देख सकता है और चाहे जिस मनुष्यके पूर्व जन्मका सविस्तर संशोधन कर सकता है।

जिस शक्तिकी सहायतासे मनुष्य उपर्युक्त सब बातें कर सकता है, उसे सामान्यरूपसे 'सूक्ष्मदृष्टि' कहा जाता है। अंग्रेजीमें Clairvoyance अथवा अत्यन्त आधुनिक भाषामें Extra Sensory Perception कहते हैं।

[अपूर्ण]

परीक्षा विभाग

संस्कृत भाषा प्रचारसमिति जयपुर

ता० ११ रविवार, बसंत पंचमीके शुभ दिवसपर स्थानीय संस्कृत भाषा प्रचार समितिका उद्‌घाटन श्री सुरजनदास स्वामी (प्राध्यापक, महाराजा महाविद्यालय, जयपुर) ने, संस्कृत कॉलेज भवनमें किया। सैकडो छात्रों और अन्य आगन्तुकोंकी उपस्थितिमें, आपने संस्कृतके महत्त्वपर सारगर्भित वक्तव्य दिया। श्री मण्डन शास्त्रीने लोगोंको स्वाध्याय-मण्डलकी परीक्षाका परिचय दिया तथा जयपुरमें उनका केन्द्र खोलनेके कार्यकी प्रशंसा की और यह आशा दिखाई कि भविष्यमें समितिका काम अवश्य बढेगा।

जयपुरके 'भारती' (संस्कृत पत्रिका) में भी निम्न दो उद्धरण पढे थे—

स्वाध्यायमण्डलस्य संस्कृतपरीक्षाः।

हर्षस्यायं विषयः यत् संस्कृतप्रचारार्थं सूरतमण्डले 'किल्ला पारडी' नगरस्थेन स्वाध्यायमण्डलेन संस्कृतपरीक्षा प्रबन्धं विधाय साधु स्थाने प्रयतितम्। अस्य परीक्षाकेन्द्राणि न केवलं भारतस्यैव सर्वेषु प्रान्तेषु अपि तु विदेशेष्वपि वर्तन्ते। एवञ्च देशे विदेशे च संस्कृतभाषा प्रचाराय स्तुत्यः प्रयत्नो विधीयते मण्डलेन। अयं प्रयासोऽतीव सामयिकः श्लाघ्यश्च। अनुमोदामहे वयमेतं प्रयत्नं हृदयेन, एतस्य साफल्यं च भगवन्तं प्रार्थयामहे।

दूसरा

स्वाध्यायमण्डल परीक्षाः

स्वतन्त्रे भारते सुरभारतीप्रचारार्थं सूरतमण्डलान्तर्गतेन स्वाध्यायमण्डलेन साधुप्रयासो विधीयते इति पूर्वं प्रकाशितास्माभिर्भारतीपत्रस्य द्वितीयेऽङ्के। तेन असंस्कृतज्ञेषु भारतीयेषु संस्कृतप्रचारार्थं कतिचित् परीक्षा अपि आयोजिताः। तासां परीक्षाणां केन्द्रं अस्मिन् वर्षे जयपुरं अपि जातम्। प्रविष्टा अस्मिन् वर्षे बहवो विद्यार्थिनः अस्यां परीक्षायाम्। आगामिन्यां परीक्षायाम् शतद्वय संख्याका (२००) विद्यार्थिनः सम्मिलिताः भविष्यन्तीति श्रूयते। स्तुत्योऽयं प्रयत्नः संस्कृतप्रचाराय।

हरिसिंह परमानन्द
केन्द्र-व्यवस्थापक

वल्लभविद्यानगर (आणन्द) केन्द्र

'वैदिक वाङ्‌मय प्रचार समिति' के अन्तर्गत वल्लभविद्यानगरमें 'संस्कृत भाषा प्रचार समिति' की स्थापना की गई। जिसके अधिकारियों एवं सदस्योंका निर्वाचन निम्न प्रकारसे हुआ।

१- प्रो० डॉ॰ रराँय र. मां कडजी भू० पू० आचार्य वल्लभविद्यानगर (प्रधान)
२- श्री० शास्त्री लक्ष्मीदेवीजी वि० धर्मविशारदा संचालिका वै० वि० मंदिर (उपप्रधाना)
३- ,, विद्याव्रतजी जे० शास्त्री केन्द्रव्यवस्थापक (मन्त्री)
४- श्रीमती तरुलिका बहिन B. A.
५- ,, करुणादेवी साहित्यरत्न
६- श्री राजेन्द्रजी वि० शास्त्री

परीक्षा विभाग

आवश्यक सूचनायें

आगामी परीक्षाओंकी तिथियाँ ता० १–२ सितम्बर (शनि-वार-रविवार) सन् १९५१ ई० निश्चित की गई हैं।

परीक्षार्थियोंको अपने आवेदनपत्र ता० १४ जुलाई तक केन्द्र-व्यवस्थापकके पास दे देने चाहिये।

आवेदन पत्र केन्द्रीय कार्यालय (पारडी) में भेजनेकी अन्तिम तिथि २१ जुलाई निश्चित की गई है।

केन्द्र व्यवस्थापकोंसे निवेदन है कि वे सम्पूर्ण आवेदनपत्र एक साथ ही भिजवावें।

आवेदनपत्रोंके साथ परीक्षार्थी-नामावलि, आवेदनपत्र-विवरण तथा प्रचारक-विवरण अवश्य भेजना चाहिये।

विलम्बसे प्राप्त, अशुद्ध अथवा अपूर्ण आवेदनपत्र स्वीकार नहीं किये जायगे।

विदर्भ विभागके लिये—

विदर्भ विभागके लिये पुस्तकें, आवेदनपत्र तथा अन्य प्रचार सम्बन्धि आवश्यक सामग्री निम्न लिखित पते पर प्राप्त की जा सकेगी।

पता– श्रीयुत विष्णु त्रिंबक दीक्षितजी सं. भा. प्र. समिति प्रान्तीय कार्यालय (विदर्भ-विभाग) डापकीरोड आकोला (बरार)

परीक्षा सम्बन्धि सभी ज्ञातव्य सूचनायें उपर्युक्त प्रान्तीय कार्यालयके पतेसे प्राप्त की जा सकती हैं।

पाठ्यक्रममें परिवर्तन

सितम्बरमें होनेवाली परीक्षाओंसे पाठ्यक्रम निम्न प्रकारसे रहेगा–

प्रारंभिनीके लिये–		सं. पाठमाला	भाग	१–२
प्रवेशिकाके	,, (प्रश्नपत्र १)	,,	,,	३–४
,,	,, (प्रश्नपत्र २)	,,	,,	५–६
परिचयके	,, (प्रश्नपत्र १)	,,	,,	७–८
,,	,, (प्रश्नपत्र २)	,,	,,	९–१०
,,	,, (प्रश्नपत्र ३)	,,	,,	११–१२
विशारदके लिये	(प्रश्नपत्र १)	सं. पाठमाला	भाग	१३
,,	,, (प्रश्नपत्र २)	,,	,,	१४
,,	,, (प्रश्नपत्र ३)	,,	,,	१५–१६
,,	,, (प्रश्नपत्र ४)	,,	,,	१७–१८

शुल्क

किसी भी परीक्षामें सीधे बैठनेकी स्वीकृति मिलने पर परीक्षार्थीसे, जिस परीक्षामें वह सीधे बैठना चाहता है, उसका शुल्क तथा १) रु० अतिरिक्त शुल्क लिया जावेगा।

३१ मार्च तथा १ अप्रैलकी परीक्षाओंका फल

इन परीक्षाओंका परिणाम ता० १८ मईको प्रकाशित होगा।

आवश्यक निवेदन

जिन केन्द्रोंसे परीक्षार्थियोंकी संख्या कम है वहाँ अधिक प्रचारकी आवश्यकता है। यह कार्य संस्कृतके अध्यापकोंका है। अध्यापक महानुभाव छात्रोंमें जितनी अधिक रुचि संस्कृत भाषाके प्रति उत्पन्न करेंगे उतनी अधिक लगनसे छात्र अपनी इस मातृ-भाषाको सीखेंगें यत्नशील होंगे। संस्कृतज्ञोंके लिये यह विशाल कार्य क्षेत्र है। राष्ट्र निर्माणके इस पवित्र कार्यमें उन सबका हमें अधिकसे अधिक सहयोग अपेक्षित है। हमें आशा है कि आगामी परीक्षाओंमें संस्कृत भाषाके प्रचार व प्रसारका क्षेत्र अधिक व्यापक होगा। नवीन केन्द्रोंकी स्वीकृतिके लिये १५ जूनतक आवेदन भेजने चाहिये।

अर्थ-धर्म-मीमांसा

लेखक- श्री ईश्वरचन्द्रशर्मा मौद्गल्य, आर्यसमाज, काकडवाडी, बंबई ४

(५)

(गताङ्कसे आगे)

दुर्लभ धातुओंकी मूल्यात्मकता का कारण

मूल्यका मूल्यवान्के साथ संबन्ध है पर जिस प्रकार गुणका संबन्ध उस गुणीके साथ होता है जिसमें वह रहता है, अथवा कर्मका संबन्ध उस कर्मवान् द्रव्यके साथ होता है जिसमें वह रहता है, इस प्रकार मूल्यका मूल्यवान् पण्यके साथ संबन्ध नहीं होता। गुण दो प्रकारके हैं- सहज और नैमित्तिक। रूप रस आदि सहज हैं और संयोग विभाग आदि नैमित्तिक। पट और रूपका स्वभाविक संबन्ध है, जिस पटमें श्वेत रूप रहता है वही पट श्वेत होता है। अंगूठी और उंगलीका संबन्ध नैमित्तिक है। उंगलीके साथ संयोग होनेसे पहले उंगली और अंगूठी पृथक् स्थान पर थीं। अंगूठीका संयोग होनेपर उंगली अंगूठीवाली हो जाती है। जिस उंगलीके साथ संयोग होगा वही उंगली अंगूठीवाली होगी। मूल्यका स्वभाव निराला है। दो गज खद्दरका मूल्य एक कुर्ता हो तो खद्दर मूल्यवान् और कुर्ता मूल्य है। जिस प्रकार पटमें श्वेत रूप रहता है वा उंगलीमें अंगूठी रहती है इस प्रकार दो गज खद्दरमें उसका मूल्य नहीं रहता। कुर्ता खद्दरमें न रूपके समान रहता है न अंगूठीके समान। खद्दर और कुर्ता भिन्न स्थान पर हैं। भिन्न स्थानमें होनेपर भी मनुष्य बुद्धि द्वारा खद्दर-के साथ कुर्तेका संबन्ध कर लेता है।

जितना एक वस्तुमें श्रम लगा है उतना अन्य वस्तुमें लगा हो तो अन्य वस्तु पहली वस्तुका मूल्य होती है। पहला श्रम पण्य है और दूसरा श्रम मूल्य है। पर क्षणिक होनेके कारण वह लेन-देनमें नहीं; आसकता इसलिये व्यवहारमें वस्तु पण्य और मूल्य बन जाती हैं। जो वस्तु पण्य है उसमें श्रम है पर वह उसका मूल्य नहीं हो सकता। खद्दर अपने आपका मूल्य नहीं होता। दो गज खद्दरका टुकडा उसी टुकडेसे नहीं खरीदा जा सकता।

व्यवहारमें मूल्यका यह स्वरूप है। यदि इसके कारण-का विचार किया जाय तो यह दशा नहीं रहती। पहले श्रमका मूल्य जब दूसरा श्रम होता है तो उसका कारण है पहलेके साथ दूसरेका साम्य। पहलेके बिना दूसरेका साम्य नहीं हो सकता। दो गज खद्दरमें श्रम न हो तो एक कुर्ता उसका मूल्य न होगा। खद्दरमें श्रम होनेके कारण कुर्ता उसका मूल्य बनता है। इस प्रकार खद्दरमें लगा श्रम मूल्यरूप कुर्तेका मूल है। इस दृष्टिसे श्रम जिस वस्तुमें है उसका मूल भी है और मूल्य भी। खद्दका श्रम खद्दरका मूल्य है। व्यवहार चलानेके लिये अवश्य दूसरी वस्तुकी सहायता लेनी पडती है। जब खद्दरका श्रम खद्दरका मूल्य है तब मूल्य और मूल्यवान्का संबन्ध भी गुण गुणीके संबन्धके तुल्य है।

व्यवहारमें मूल्यका स्वरूप दो प्रकारका है। जब वस्तु-का वस्तुसे विनिमय होता है तब मूल्य वस्तुमय होता है। जब सोना वा चांदीके किसी अंश द्वारा वस्तुका विनिमय होता है तब मूल्य धातुमय हो जाता है। अनात्मवादी अर्थ शास्त्रके अनुसार आरम्भमें मनुष्य जातिका ज्ञान अत्यन्त मन्द, लगभग पशुओंके तुल्य था। इस दशामें वे वस्तुओंका विनिमय केवल वस्तुओंसे करते थे। धीरे धीरे मनुष्योंका ज्ञान उन्नत होता गया। उन्नत होनेपर उन्होंने धातुओं द्वारा वस्तुका विनिमय करना आरम्भ किया। पर आत्मवादके अनुसार आरम्भ में समस्त मनुष्य जातिका पशु तुल्य ज्ञानकी दशामें होना असंगत है। जन्मान्तरके कर्मोंके अनुसार कुछ मनुष्योंकी बुद्धि निकृष्ट होगी तो कुछकी उत्कृष्ट भी होगी। उत्कृष्ट प्रतिभावाले

मनुष्य प्रत्येक युगमें आजके समान दोनों प्रकारके मूल्यका व्यवहार कर सकते हैं। उनके लिये इस प्रकारका कोई युग नहीं था जिसमें उन्हें मूल्यके स्वर्णमय वा रजतमय अथवा किसी अन्य धातुमय रूपका ज्ञान न हो। ज्यों ही उन्हें वस्तु द्वारा वस्तुओंके विनिमयमें कठिनाईका अनुभव हुआ त्यों ही उन्होंने धातुओंको मूल्यके रूपमें कर दिया। अन्य असंस्कृत मनुष्य समाजके समान उनको युगों तक धातुमय मूल्यके आविष्कार की प्रतीक्षा नहीं करनी पडी। असंस्कृत बुद्धि क्रमसे अनेक परिणाम प्राप्त करती हुई जिस आविष्कारतक पहुंची है वहां तक वा उससे आगे पहुंचनेके लिये संस्कृत बुद्धिक्रमसे परिणत नहीं होती। वह छलांग लगाकर क्षण भरमें बहुत दूर जा सकती है। जो मनुष्य समाज किसी कालमें पशु तुल्य ज्ञान रखता है उसकी संतान भविष्यके किसी कालमें उन्नत ज्ञान प्राप्त कर सकती है। इस प्रकारके मनुष्य समाजका लेन-देन भी पहले वस्तुओं द्वारा और पीछे धातुमय मूल्य द्वारा हो सकता है। पर आरम्भकी समस्त मनुष्य जातिके लिये पशुतुल्य दशा आवश्यक नहीं है। यह विषयान्तर है इसमें मुझे नहीं जाना।

उन्नत मनुष्य समाजमें भी विचार क्रमके अनुसार वस्तु का मूल्य पहले वस्तु है। सोना और चांदी वस्तुओंके मूल्य पीछे बनते हैं। वस्तु द्वारा वस्तुका विनिमय स्वाभाविक है। व्यापक रूपसे समस्त वस्तुओंका विनिमय नहीं हो सकता इसलिये धातुओंका मूल्य बनाना पडता है। धातुओंका मूल्य होना नैमित्तिक है। निमित्त स्वाभाविक दशाके पीछे आता है इसलिये नैमित्तिकका पीछे होना अनिवार्य है।

कल्पना कीजिये बुनकरके पास वस्त्र हैं वह उनको बेचना चाहता है। यदि किसान गेहूं पहले खरीद चुका हो तो वह उसको वस्त्र नहीं बेच सकता। लुहारको यदि वस्त्रोंकी आवश्यकता हो तो वह वस्त्र लेनेको उद्यत हो सकता है पर उसके पास देनेको छुरी और चाकू हैं। बुनकरको इनकी आवश्यकता नहीं। इस दशामें उपयोगी वस्तुओंके पास होनेपर भी ये लेन-देन नहीं कर सकते। समय समय पर नाना वस्तुओंकी आवश्यकता होती रहती है। उनको खरीदनेके लिए कोई भी मनुष्य इस प्रकारकी वस्तुओंका ढेर अपने पास नहीं रख सकता जिनको देकर विनिमय कर ले। इतनी वस्तुओंके रखनेके लिये सबके पास पर्याप्त स्थान नहीं होता। सोना वा चांदीके मूल्य होने पर यह सारी कठिनता नहीं रहती। बुनकर जब चाहे अपना वस्त्र लुहारको बेच सकता है। लुहार अब चांदीके रूपमें वस्त्रोंका मूल्य दे सकता है। इस मूल्यको रखनेमें बुनकरको किसी प्रकारकी कठिनता नहीं है। इस मूल्यके द्वारा किसान जब चाहेगा तब आवश्यक वस्तु खरीद लेगा।

विवेकी मनुष्य-समाजमें व्यवहार इस रीतिसे चलता है पर निकृष्ट ज्ञानके मनुष्य समाजमें मूल्यकी दशा इससे भिन्न रहती है। निकृष्ट ज्ञानके समाजोंमें लेन-देनकी सीमा पहले संकुचित रहती है। वे समाज जब परस्पर लेन-देन करने लगते हैं तो उनका व्यवहार फैलने लगता है। जब उन्हें वस्तुओं द्वारा वस्तु खरीदनेमें कठिनता होती है तो वे किसी अत्यन्त उपयोगी वस्तुको लेन-देनका साधन बना लेते हैं। जो भी वस्तु इस रूपमें आती है वह मूल्य बन जाती है। इस प्रकारकी कोई एक वस्तु निश्चित नहीं होती। अवसरकी बात है, कभी एक वस्तु मूल्य बनती है तो कभी दूसरी। अन्य दशाके कई समाज बकरी, गऊ, घोडा, आदि पशुओंको लेन-देनका साधन बना लेते हैं। उस दशामें वे ही मूल्य हो जाते हैं। कई बार खाने पीने और पहननेकी वस्तुओंको मूल्य बना दिया जाता है। जो अकेली वस्तु अन्य अनेक वस्तुओंके लेन-देनका साधन बनती है वही मूल्य हो जाती है। मूल्यकी प्रतिष्ठा होनेपर केवल बेचनेके लिये लोग वस्तु उत्पन्न करने लगते हैं। इस अंशमें अन्य और नागरिक समाजोंकी अवस्था समान है। दोनों इस प्रकारकी वस्तु उत्पन्न करने लगते हैं जिनका प्रयोजन केवल बेचना होता है। वे अपने उपयोगके लिये नहीं होती। भेद केवल यह होता है कि अन्य समाज चांदी सोने आदिका मूल्यके रूपमें आविष्कार नहीं कर चुका होता। पर नागरिक समाज मूल्यमें चांदी सोनेका प्रयोग करने लगता है।

* मार्क्सके अनुसार धन एक वस्तु है जिसे अमूर्त होने

---

* पूंजी, पृ० ९९।

पर भी आवश्यकताके कारण घना बना लिया गया है। इसके कारण वस्तु पण्य बन जाती है। पण्योंके उपयोग और मूल्यमें जो विरोध अव्यक्त रूपसे था उसे विनिमयका क्रमशः होनेवाला विस्तार स्पष्ट कर देता है। इस विरोधके स्पष्ट करनेकी आवश्यकता मूल्यके स्वतन्त्र रूपकी स्थापना करती है। जबतक वह पण्य और मूल्यका भेद नहीं स्थिर कर लेती तब तक प्रयत्न करती रहती है। ×पण्यमें जो उपभोगकी उपयोगिता है वह विनिमयकी उपयोगितासे पृथक् रूपमें उस क्षणमें स्पष्ट हो जाती है जब पण्यकी रचना केवल विनिमयके लिये होती है। पर मूल्यके स्वतन्त्र रूप पर ध्यान दिया जाय तो उपयोगिता और मूल्यका विरोध नहीं सिद्ध होता। चांदी सोना वा कोई उपयोगी वस्तु जब स्वतन्त्र मूल्य बन जाती है तब पण्य और मूल्यका भेद तो हो जाता है पर उपयोगिता और मूल्यका विरोध नहीं होता। मूल्यको उपयोगितासे सर्वथा पृथक् नहीं किया जा सकता। श्रम और उपयोगिताके होनेपर मूल्य बनता है। दोनोंमें से एक भी न हो तो मूल्य नहीं रहता। जब किसी विशेष पण्यको वा चांदी सोनाको मूल्य बनाते हैं तो उनको केवल सामान्य श्रमका ही नहीं सामान्य उपयोगिताका भी स्वरूप मान लेते हैं। मूल्य रूपमें आकर एक विशेष पण्य अन्य कई पण्योंका विनिमय करता है। जिनका विनिमय करता है उनमें उपयोगिता भी होती है और श्रम भी होता है। इन वस्तुओंका मूल्य बननेके लिये किसी विशेष पण्यमें वा सोना चांदीमें सामान्य रूपसे उपयोगिता और श्रम दोनों होने चाहिये। यदि इनमें केवल सामान्य श्रम हो तो वे विनिमयका साधन नहीं बन सकते। वस्तुत. स्वतन्त्र रूपके मूल्यमें मूल्य और पण्यका जो भेद होता है उसका स्वरूप विलक्षण है। जब एक पण्यका दूसरा पण्य मूल्य होता है तब जिस प्रकार मूल्यवान् पण्य उपभोगके योग्य होता है और उसमें श्रम होता है इस प्रकार जो पण्य मूल्य बनता है वह भी उपभोगकी योग्यता और श्रमसे युक्त रहता है। दो गज खद्दर उपयोगी है और श्रमसे उत्पन्न है।

एक कुर्ता उसका मूल्य है, उसमें भी उपयोगिता और श्रम हैं। इस दशामें पण्य और मूल्य समान हैं। पण्यका उपादान कारण पण्यके साथ है मूल्यका उपादान कारण मूल्यके साथ है। दो गज खद्दरके उपादान कारण तन्तु हैं वे खद्दरके साथ हैं। खद्दर बिना तन्तुओंके नहीं रह सकता। कुर्ता मूल्य है उसका उपादान कारण खद्दर है। उपयोगिता वस्तुके गुणोंसे होती है, गुण उपादान कारणके बिना रह नहीं सकते। जो वस्तु मूल्य बनेगी वह भी उपयोगी होनी चाहिये। जिसके पास मूल्य भूत वस्तु है उसके लिये उसका उपयोग उपभोगमें यद्यपि नहीं है पर जो उसे लेगा उसके उपभोगमें तो वह आवेगी ही। पण्यके स्वामीके लिये पण्य उपभोगकी वस्तु नहीं होते वे केवल उन्हें बेचना चाहते हैं। जो उन्हें खरीदते हैं वे उनका उपभोग करते हैं। कोई भी उपभोग करे उपभोग योग्य हुए बिना वस्तु न पण्य बन सकती है न मूल्य।

जबतक अकेली दो वस्तुओंका परस्पर विनिमय होता है तबतक उनकी विशिष्ट उपयोगिता आवश्यक होती है। खद्दरका उपयोग भिन्न है और कुर्तेका भिन्न। जब एक वस्तु अनेक पण्योंका मूल्य बनती है तब भी वस्तुका उपादान कारण वस्तुके साथ रहता है पर तब वह किसी विशेष उपभोगका कारण नहीं होती। दो गज खद्दर अनेक पण्योंका मूल्य बननेपर उपादान कारणसे रहित नहीं होता। तब भी तन्तु उसके उपादान कारण होते हैं। तब भी खद्दरसे कुर्ता बन सकता है पर तब खद्दर किसी विशेष उपयोगिताके कारण मूल्य नहीं बनता। दो गज खद्दरके द्वारा फूल फल लकडी और गेहूं आदिका विनिमय हो सकता है। फूल फल लकडी आदि नाना हैं इनके उपयोग भी नाना हैं। मूल्य रूप दो गज खद्दर एक है वह सामान्य श्रम और सामान्य उपयोगिताके कारण मूल्य है। अनेक पण्योंका मूल्य होनेके कारण खद्दरमें उपयोगिताका सामान्य स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

[अपूर्ण]

× वहीं, पृ० १०० ।

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप [लेखांक २७]

कृष्णावतारमें अपहृत स्त्रियोंका प्रश्न

(लेखक— श्री. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

भगवान् श्रीकृष्णके समय अपहृत स्त्रियोंका प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन गया था। एक असुर राजाने आर्यावर्तकी १६१०८ आर्यकन्याओंका अपहरण किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समयका यह अपहरण सामुदायिक रूपमें हुआ था। भगवान् श्रीकृष्णने युद्ध करके उस दुष्ट असुरका नाश किया और इन अपहृत स्त्रियोंको छुडाकर मुक्त किया। अपहृत स्त्रियाँ जबतक मुक्त नहीं हो जातीं तबतक उनकी मुक्तिकी समस्या जनताके सामने विकट रूपसे उपस्थित रहती है और उस समयतक जनता भी उनकी मुक्तिके लिये जोरोंसे आवाज बुलन्द किया करती है। किन्तु जब उन अपहृत स्त्रियोंकी मुक्ति बलात्कारियोंसे हो जाती है। उस समय उनके भविष्यकी व्यवस्थाका विकट प्रश्न जनता-के सामने और भी अधिक विकट रूपमें आकर खडा हो जाता है। भगवान् श्री कृष्णने इन हजारों कन्याओंकी मुक्ति जब राक्षसोंके पंजोसे की तो इनके सामने ये प्रश्न विकटरूपसे आकर उपस्थित हो गये।

१— अब इन कन्याओंका क्या किया जावे?

२— क्या मातापिता इन्हें घरमें रख लेंगे और इनसे सन्मान पूर्वक व्यवहार करेंगे?

३— अच्छे कुलोंमें इनका विवाह होकर क्या इन्हें वहाँ आदरणीय स्थान प्राप्त होगा?

४— क्या ये सन्मानपूर्वक समाजमें जीवित रह सकेंगी?

५— यदि सन्मानपूर्वक हम इन्हें समाजमें न अपना सके तो वे अपना जीवन-यापन किस प्रकार करें?

६— जिनका अपहरण बलपूर्वक हुआ है, वे कन्यायें हमारे समाजके तिरस्कारपूर्ण व्यवहारसे तंग आकर पुनः स्वयं ही- विवशतया- राक्षसोंके पास रहनेके लिये तो तैयार न होंगी?

ऐसी दुःखद परिस्थिति उत्पन्न न होनेके लिये क्या किया जाय?

इस प्रकारके अनेक प्रश्न भगवान् श्री कृष्णके सामने अवश्य ही आये होंगे तथा स्वयं भगवान् श्री कृष्णने और उनके साथियोंने इन अनेक प्रश्नोंका खूब विचारपूर्वक ऊहापोह किया ही होगा। वीर पुरुष अपने शौर्यसे अपहृत स्त्रियोंकी मुक्ति कर सकता है; किन्तु समाजके ऊपर किन्हीं नये संस्कारोंको लादना उसके लिये संभव नहीं है।

इन मुक्त हुई आर्यकन्याओंको पूर्णतः विदित था कि हमें अपने मातापिताके घरोंमें सम्मानका स्थान मिलना संभव नहीं है। मातापिताके घर हमारा तिरस्कार ही होगा। इसलिये किसी प्रतिष्ठित कुलमें हमारा विवाह होकर सम्मानित रूपसे रह सकना भी संभव नहीं है। अर्थात् हमारा भविष्य दुःख, दैन्य, अप्रतिष्ठा, अपमान तथा कष्टोंसे परिपूर्ण ही रहेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इन आर्यकन्याओंको ये सब बातें स्पष्ट रूपसे दिखाई देती थीं। इस कारण इन आर्यकन्याओंने अपने मातापिताके पास जानेके लिये मना कर दिया और यह बिल्कुल स्वाभाविक था।

ऐसी इन हजारों कन्याओंको जिन्होंने जन्म दिया उन मातापिताओंके घरोंमें यदि इन्हें स्थान नहीं है तो अब ये जांय तो भी कहाँ? जिन्हे प्रत्यक्षतः मातापिता स्वीकार नहीं करते, उनका पालनकर्ता दूसरा कौन भला होगा? यदि राजा अपने व्ययसे इनका पालन करे तब भी इनका भविष्य आखिर क्या होगा? जिन्हे स्वयं मातापिता स्वीकार नहीं करते उनका विवाह किससे हो? कोई भी श्रेष्ठ कुलका पुरुष ऐसी युवतियोंसे विवाह करनेको तैयार न होगा, फिर इनका क्या किया जावे?

यह प्रश्न भगवान् श्री कृष्ण, उनके सलाहगार तथा उन आर्यकन्याओंके सन्मुख उपस्थित हुआ और इस प्रश्नको लेकर सभी सचिंत हो गये। किसीको कुछ भी सुझाई नहीं देता था। श्री कृष्णके अनुयायी छप्पन कोटि यादव ऐसी कन्याओंसे विवाह करनेको तैयार न थे; और कोई उन्हें स्वीकार करता न था। इस परिस्थितिको देखकर उन आर्यकन्याओंने स्वयं ही कृष्णसे कहा—

" जिन्होंने राक्षसोंके बन्दीखानेसे हमें मुक्त किया है, उसीका हमने वरण किया है और इस प्रकार भगवान् श्री कृष्ण ही हमारे पति हैं। हमें अपने मातापिताके पास नहीं जाना है अथवा और किसीका भी वरण नहीं करना है। श्री कृष्ण ही हमारे पति, आश्रय, शरण्य तथा उपास्य देव हैं।"

इसके सिवा और कुछ भी बनना संभव न था। इस कारण भगवान् श्री कृष्णको इन अपहृत सभी आर्यकन्याओंका पाणिग्रहण करना पडा। भगवान् श्री कृष्ण अत्यन्त प्रतापी थे, यह सत्य है, किन्तु तत्कालीन आर्य जनता इतने बडे प्रतापी लोकोत्तर पुरुषका भी अपहृत कन्याओंके विषयमें समाधानात्मक भाषण सुननेको तैयार न थी।

अपहृत कन्यायें अपहृत होते ही पतित हो जाती हैं, उनका पुनः समाजमें कोई स्थान नहीं है, यही समाजकी विचारधारा थी।

किन्तु भगवान् श्री कृष्णको यह जनमत स्वीकार न था। कन्याओंका अपहरण राष्ट्रीय आपत्ति है तथा इस आपत्तिका निवारण राष्ट्रहितकी दृष्टिसे ही करना चाहिये। स्त्रियोंका शुद्धिकरण रजोदर्शन द्वारा प्रतिमास हुआ करता है। तब यदि इस प्रकारकी स्त्रियोंको समाजमें प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हो तो वे समाजका भूषण बनकर रह सकती हैं।

जिन स्त्रियोंका अपहरण होता है वे मनसे अपवित्र होती हैं, ऐसा कहना कदापि उचित नहीं है।

जिन पुरुषोंपर उनके संरक्षणका भार रहता है उन पुरुषोंके द्वारा उनकी रक्षा यदि न हो सकी तो यह दोष उन पुरुषोंका है। पुरुषोंको चाहिये था कि शत्रुओंका पराभव करते और इसप्रकार स्त्रियोंका अपहरण न होने देते। अर्थात् अपहृत होना स्त्रियोंका अपराध नहीं है।

उनपर गुण्डोंने आक्रमण किया, उनका धर्षण किया किन्तु इसमें उन स्त्रियोंका क्या दोष? यह सारा दोष तो संरक्षण करनेमें असमर्थ उन मनुष्योंका है। ऐसी स्थितिमें अपहृत स्त्रियोंको समाजमें पुनः प्रतिष्ठाका स्थान मिलना ही चाहिये। भगवान् श्री कृष्ण इसी उदार मतको माननेवाले थे।

उन कन्याओंका निश्चय, समाजकी परिस्थिति और उन्हें समाजमें सन्मानका स्थान प्राप्त करा देनेकी आवश्यकता इन सब बातोंपर विचार करनेके पश्चात् भगवान् श्री कृष्णने इन सबका पाणिग्रहण स्वयं करनेका निश्चय किया और इस प्रकार श्री कृष्णकी १६,१०८ स्त्रियाँ हुई।

इतनी स्त्रियाँ करनेके लिये बहुतसे लोग श्री कृष्णपर आक्षेप किया करते हैं। उन्हें चाहिये कि वे उपर्युक्त परिस्थितिपर गम्भीरता पूर्वक विचार करें तथा उसके बाद अपनी संमति स्थिर करें। जोकुछ किया जाना संभव था वही श्री कृष्णने उस समय किया। उच्च कुलीन कन्याओंको किसी भी हीन स्थितिके पुरुषोंके गले बांध देना उचित न था। साथ ही जब कि वैसी स्थितिमें उन्हे कोई स्वीकार करनेके लिये तैयार न था तो वे और करते भी क्या? इसका उत्तर बहुत कठिन है। आक्षेप करना बहुत सरल है किन्तु उस परिस्थितिपर काबू पाना अत्यंत कठिन है। उन कन्याओंके मातापिता आदि सम्बन्धि जब उन्हे अपने परिवारमें लेते न थे, उत्तम कुलोंके नवयुवक उनसे विवाह करनेके लिये तत्पर न थे; ऐसी स्थितिमें उन कन्याओंको निरवलम्ब छोड देनेका अर्थ यही होता कि राक्षस लोग पुनः उन्हे उडाकर ले जावें। यदि यही बात अपेक्षित होती तो वे इन कन्याओंकी मुक्ति भला किसलिये कराते? यह प्रश्न उपस्थित होता है।

आज भारतवर्षमें हिन्दू कन्याके जरा भी इधर उधर चलविचलित होनेपर मातापिता उसे अपने घरमें नहीं लेते। उनके रहनेके लिये कोई हिंदु संस्था भी नहीं है। यही कारण है कि वे कन्यायें अपनी खुशीसे परधर्मियोंके घरमें जा पहुँचती हैं। पंजाब और सिन्धमें अब हिंदु-बस्ति नहीं रही। किन्तु पाकिस्तान होनेसे पूर्व हिंदुओंकी कन्यायें इस प्रकारसे मातापिताके घरोंसे निकाल दी जाती थीं।

जातीय परिशुद्धिकी हिंदुओंकी यह कल्पना इस प्रकारसे हिंदुओंके विनाशके ही कारण बनी रही है। रामावतारके समय अहल्याके विषयमें पुनः संग्रहका कार्य रामने करवाया और यह मार्ग खोल दिया किन्तु सीताके विषयमें वे स्वयं उसपर चलनेमें असमर्थ रहे।

रामावतारके समय भी इन असुर राक्षसोंने अनेक आर्य-कन्याओंका अपहरण किया था। उन सबमें एकमात्र सीता ही लौटायी जा सकी थी, किन्तु वह भी पतिगृहमें टिककर न रह सकी। जिस जनमतने सीता जैसी सती साध्वीका छल करने तथा उसे घरसे निष्कासित करनेमें कसर न रखी वह जनमत आज भी ज्योंका त्यों है! और इसी जनमतने १६,१०८ कन्याओंका प्रश्न भगवान् श्री कृष्ण जैसे लोकोत्तर पुरुषके लिये असाध्य बना दिया।

श्री कृष्णके लिये दूसरा कोई मार्ग ही न बचा था। इसलिये उन्होंने इन इतनी अपहृत स्त्रियोंसे स्वयं विवाह कर लिया और समाजमें उनको श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कराया। भगवान् श्री कृष्णने अपहृत स्त्रियोंकी समस्या किस प्रकार हल करनी चाहिये यह स्वयंके उदाहरणसे सिद्ध कर दिखाया। किन्तु इस उदाहरणसे यह सिद्ध नहीं होता कि मनुष्यको अनेक विवाह करने चाहिये अपितु इससे तो यह सिद्ध होता है कि उच्च कुलीन श्रेष्ठ नवयुवकोंको ऐसे पवित्र कार्योंके लिये स्वयं आगे बढना चाहिये।

आज पाकिस्तानमें २५-३० हजार अपहृत आर्य कन्यायें हैं। वे जबतक लौट नहीं आती तबतक पाकिस्तानी जनताको हिन्दु दोष देते रहेंगे। किन्तु यदि वे सभी स्त्रियाँ वापिस आगई तो उन्हें समाजमें प्रतिष्ठित स्थान दे सकना कितना कठिन है यह उस समय विदित हो जायेगा।

भगवान् श्री कृष्णके समय श्री कृष्णका स्थान सबमें श्रेष्ठ था। स्वकीय एवं परकीय जनोंमें उनका आदर सन्मान बहुत अधिक था। विद्वत्ता, धन, ऐश्वर्य, योजकता, बुद्धि, शौर्य, सौन्दर्य, कुलीनता आदि सभी गुणोंमें उनकी बराबरी करनेवाला दूसरा कोई नहीं था। राजनीतिमें तो इन्होंने सम्पूर्ण भारतके राजाओंको शतरंजके प्यादोंके समान अपनी इच्छाके अनुरूप मोड लिया था। कौरव-पाण्डवोंके सघर्षमें पाण्डवोंका सम्पूर्ण नेतृत्व श्री कृष्णने ही किया था।

यही कारण था कि उस समय भगवान् श्री कृष्णको असाधारण महत्व प्राप्त हुआ था। किन्तु इतने अधिक प्रभावशाली एवं सन्मानित पुरुष होनेपर भी वे किसी दूसरेको इस बातके लिये प्रोत्साहित करनेमें असमर्थ रहे कि वे लोग अपहृत स्त्रियोंके साथ विवाह कर लें। इससे यह सिद्ध होता है कि तत्कालीन जनमत इस विषयमें श्री कृष्णसे विरुद्ध था। इसीलिये इन सब कन्याओंके साथ भगवान् श्री कृष्णको स्वयं विवाह करना पडा।

समाजकी रक्षा करनेके लिये ऐसे अवसरोंपर क्या करना उचित है, यह उन्होंने स्वयं करके दिखा दिया। बडे आदमियोंको ही यह करना चाहिये।

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः।

मनु २।२४०

स्त्रियाँ, रत्न, विद्या, धर्म, शुद्धता, सुभाषित और नाना प्रकारकी शिल्पकला किसीके पाससे भी ग्रहण कर लेनी चाहिये। मनुस्मृतिका यह आदेश विचार करने योग्य है।

हमें अपनी रक्षा-व्यवस्था इस प्रकारकी करनी चाहिये कि जिससे कोई भी स्त्रियोंको भगाकर ले जानेका दुःसाहस न कर सके। इतना होनेपर भी यदि गुण्डोंका जोर बढ जाय और वे स्त्रियोंका अपहरण करनेमें समर्थ हो जांय तो हमें स्त्रियोंको मुक्त करानेका कठोर प्रयत्न करना चाहिये और पुनः वे अपने अपने घरोंमें सन्मानपूर्वक रह सकें, इसका प्रबन्ध करना चाहिये। अपहरण एक सामाजिक आपत्ति है। जिस प्रकार महामारी एक आपत्ति है ठीक उसी प्रकार अपहरण भी एक आपत्ति है।

समाजमें अपहरण करनेवाले गुण्डे न रह सकें इसका प्रबन्ध शासक संस्थाको करना चाहिये। समाजको ऐसे स्वयं सेवक निर्माण करने चाहिये कि जिनके कारण स्त्रियोंका अपहरण करनेका किसीका साहस ही न हो सके। अपने तेज और सामर्थ्यकी वृद्धि करनी चाहिये। जो गुण्डे हिंदुस्थानकी हिंदु स्त्रियोंका अपहरण करते हैं वे ही गुण्डे इग्लेंड जर्मनी, अमरीका और जापानमें जाकर वहाँकी स्त्रियोंका अपहरण करनेका साहस नहीं कर सकते। जो जाति निर्बल होती है उसीकी स्त्रियोंका अपहरण हुआ करता है। बलवान् जातिकी स्त्रियोंका अपहरण कोई नहीं कर सकता।

अपहरण रोकनेके लिये एकमात्र उपाय यही है कि हम अपनी जातिकी उग्रता बढायें।

इतना होनेपर भी यदि अपहरणकी दुर्घटनायें हों तो हमें अपनी स्त्रियाँ गुण्डोंके चंगुलसे छुडाकर उनके लिये ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि वे सन्मानपूर्वक समाजमें रह सकें।

जनमतकी उपेक्षा करके सीताको अपने घरमें रख सकना भगवान् रामके लिये भी संभव न हो सका। सीता अपवित्र नहीं हुई थी तथापि उसके विषयमें अपवाद फैले और अन्तमें सीताको वनमें छोड देनेतक की नौबत आ पहुँची। किन्तु कृष्णावतारमें इतनी अपहृत स्त्रियोंके साथ पाणिग्रहण करनेपर भी श्री कृष्णको किसीने दोष नहीं दिया। अर्थात् कृष्णावतारके समय सभी बडे व्यक्तियोंका ऐसा मत था कि अपहृत स्त्रियोंकी समस्या इसी प्रकार हल की जाय।

रामावतारके समय सामुदायिक अपहरणकी घटना हुई नहीं दीखती। किन्तु कृष्णावतारके पूर्व सामुदायिक अपहरण होता था, ऐसा लगता है। भारतवर्षमें दूसरे विदेशी असुर- आते, यहाँ रहते और यहाँकी स्त्रियोंका अपहरण भी करते, ये बातें सिद्ध करती हैं कि उस समय समाज बलवान न था। श्री कृष्णने ऐसे गुण्डोंका विनाश किया और अपहृत स्त्रियोंको समाजमें पचा लिया; यही उचित भी था।

भगवान् श्री कृष्णने अपहृत स्त्रियोंकी समस्या हल करनेका जो मार्ग उपस्थित किया वही एकमात्र सफल उपाय है। किन्तु दुःखके साथ कहना पडता है कि उसी मार्गका अवलंबन करनेके लिये आज हिन्दु जाति तैयार नहीं है।

हिन्दुजाति अवतारोंपर श्रद्धा रखती है, यह सत्य है, किन्तु अवतारोंने जो सन्देश दिये हैं, उन्हें माननेको वह तैयार नहीं है। यह हमारा कितना बडा दुर्भाग्य है।

अनुवादक— महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

आर्य संस्कृतिपर कुठाराघात

(' हिन्दुजातिका उत्थान-पतन ' पर एक दृष्टि)

लेखक- श्री शिवपूजनसिंहजी ' कुशवाहा ' कानपूर

⁕⁕⁕⁕⁕

विद्यानिधि श्री रजनीकान्त ' शास्त्री ', बी. ए. बी. एल., ' साहित्य-सरस्वती ', ' ज्योतिर्भूषण ' ने " हिन्दू जातिका उत्थान और पतन " नामक ३५२ पृष्ठकी एक पुस्तक लिखी है। यह सन् १९४७ ई० में किताब महल ५६ ए जीरो रोड, इलाहाबादसे प्रकाशित हुई है। आपने इस पुस्तकको लिखनेमें प्रचुर परिश्रम किया है, परन्तु कहीं २ आपने अपनी अनर्गल लेखनी चलाई है जिससे साधारण जनतामें भ्रम फैलना सम्भव है। अतएव इस पुस्तकपर ऊहापोहसे विचार किया जाता है।

इसमें सप्त परिच्छेद हैं। प्रथम ' हिन्दू शब्दकी उत्पत्ति ', द्वितीयमें ' हिन्दू जातिकी उत्पत्ति ', तृतीयमें, ' रक्त-सम्मिश्रणके कारण ', चतुर्थमें ' प्राचीन हिन्दुओंका खान-पान ', पञ्चममें ' सामर्थ्य और दोष ' षष्ठमें, ' वर्ण व्यवस्था तथा जाति भेद ', और सप्तममें विविध विषय, उपसंहार हैं।

' आप ' द्वितीय परिच्छेद ' पृष्ठ २३,२४,२५,२६, में ' राजपूतोंकी उत्पत्ति ' पर विचार करते हुए लिखते हैं कि ' राजपूत विदेशी जातियोंकी सन्तान हैं, तथा अनार्य रक्त संमिश्रण हैं आदि।

समीक्षाः- आधुनिक अन्वेषणोंसे यह भली भाँति सिद्ध हो चुका है कि राजपूत क्षत्रिय एक ही हैं और इनमें विदेशियोंका रक्तमिश्रण नहीं हैं।

प्रायः- ६० वर्ष पूर्व एल्फिन साहबके भारतवर्षके इतिहासके सम्पादक श्री ई० बी० कॉवेलने टाडकी युक्तियोंका खण्डन किया और राजपूतोंको शुद्ध क्षत्रिय लिखा था। १

सुप्रसिद्ध भारतीय इतिहासवेत्ता, रायबहादुर, महामहोपाध्याय, साहित्य वाचस्पति डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा डी० लिट्० ने अपने " राजपूतानेका इतिहास " प्रथम जिल्दमें राजपूतोंको क्षत्रिय सिद्ध किया, परन्तु कॉवेलके आधारपर नहीं। आपने कॉवेलका उदाहरण कहीं नहीं दिया है।

श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए० अपने ' History of Madiaeval Hindu India ' में और डा० स्टीन कोनोने भी राजपूतोंको शुद्ध क्षत्रिय लिखा व माना है। मित्रवर ठा० जगदीशसिंह गहलोत एम० आर० ए० एस०, विद्या विनोदने हाल ही में " राजपूतानेका इतिहास " प्रथम भाग लिखकर उसमें राजपूतोंको क्षत्रिय सिद्ध किया है।

अतएव राजपूतोंको विदेशी कहना ऐतिहासिक अनभिज्ञता है। आगे आपने पृष्ठ २५, २६ में डा० एच० एच० विल्सन तथा स्मिथ साहबके लेखोंका अवतरण देते हुए राजपूतोंको शक, हूण, गुर्जरकी सन्तान सिद्ध करनेका प्रयास किया है।

आपको कोई तर्क, युक्त नहीं मिला तो पाश्चात्य विद्वानोंकी शरणमें गए।

यहाँ पाश्चात्य विद्वानोंके लेखोंके ही आधारपर दिखलाया जाता है कि राजपूत शुद्ध क्षत्रिय हैं। देखियेः-

१ देखो- ' Eleplieatone 's History of India ' Ninth edition, P. 247 to 250 [राजपूत शुद्ध क्षत्रिय हैं, इसके लिये पाठकोंको मेरा ' राजपूतोत्पत्ति-मीमांसा ' शीर्षक लेख देखना चाहिये जो मासिक ' क्षात्रधर्म-सन्देश ' जयपुर, जून १९४४-४५ तकमें प्रकाशित हुआ है]

डब्ल्यू क्रूक साहब लिखते हैं:— "Rajput (Rajputra). Son of King, 'The warrior and land-owning race of northern India, who are known as Thakur, 'Lord' (Sanskrit Thakkura), or Chhatri, the modern representative of the ancient Kshatriya. २

अर्थात्-राजपूत (राजपुत्र), राजाका पुत्र। उत्तरी भारतके वीर और भूमिपति वंश, जो कि ठाकुर 'भूमि-स्वामी' संस्कृत (ठाकुर) या छत्री कहलाते हैं, प्राचीन क्षत्रियोंके प्रतिनिधि हैं।

पादरी ए० एम० शेरिङ्ग साहब एम० ए० लिखते हैं:— "The Kshatriya or Rajput tribes... this is the second of the great Hindu castes and is called Kshattriya and Rajput almost indiscriminately. ३

अर्थात्-क्षत्रिय या राजपूत जाति यह बृहत् हिन्दू जातियोंमें द्वितीय है और क्षत्रिय तथा राजपूत नितान्त मिले हुए कहलाते हैं।

ह्वीलर क्षत्रियोंके विषयमें कहता है:— "Thy were all Rajputs" ४ अर्थात्-वे सभी राजपूत थे।

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मि० हण्टर साहब कहते हैं:- "Their old Sanskrit names Kshatriya, Rajaniya and Rajbansi, mean connected with the 'Royal prower', or 'of the royal line' their usnal modern name. Rajput, means 'of royal descent'. The warriors and King's companions called in ancient time Kshatriya, at the present day Rajputs." ५

अर्थात्- इनके प्राचीन संस्कृत नाम क्षत्रिय, राजन्य और राजवंशी हैं, जिसका अर्थ होता है 'राजकीयशक्ति' या 'राजकीय चिन्ह' के साथ सम्बन्धित, इनका व्यवहारिक साधारण नाम राजपूत है, जिसका अर्थ राजकीयवंश है, प्राचीन कालमें वीर और राजाके सिपाही क्षत्रिय कहलाते थे और वर्तमान कालमें राजपूत। अनेक भारतीय विद्वान् भी राजपूतोंको शुद्ध क्षत्रिय मानते हैं। यथा- पं० योगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य एम० ए०, डी०, एल०६, वेदवाचस्पति पंडित मोतीलाल शास्त्री७, पंडित हरिमङ्गल मिश्र एम० ए०८, प्रो० लौटूसिंह गौतम एम० ए० काव्यतीर्थ९, चारण रामनाथरत्नू१०, श्री रामनारायण दूगड़११, विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र१२'।

आजसे ७७ वर्ष पूर्व प्रिवी कौंसिलने भी फैसला किया था कि राजपूत शुद्ध क्षत्रिय हैं यथा--

'Their is a decision of H. M's Privy Council in which it is clearly laid down that the Kshatriya still exist in India and that the Rajputs are considered to be long to that class. 13.

---

२ देखो:- Crooke's 'Tribes and Castes of the N. W. P. and Oudh.' Vol. 4, P. 217.

३ "Hindu Tribes and Cast" Vol. I. Part 2, Chapter I. pp. 115-117.

४ Ibid.

५ Wheeler's "Short History of India" P. 11. Foot note.

६ देखो:- "Hindu Castes and Sects" p. 317.

७ 'हिन्दी गीता विज्ञान भाष्य- "भूमिका" पृष्ठ ३७५

८ 'प्राचीन भारत'

९ 'भारतवर्षका इतिहास' प्रथमभाग, पृष्ठ ९२-९३

१० 'इतिहास राजस्थान' प्रथम संस्करण पृष्ठ ८-९

११ 'राजस्थान-रत्नाकर,' भाग प्रथम (उदयपुर) तरंग १, पृष्ठ ६७

१२ 'जाति-भास्कर' पृष्ठ २३१' (संवत् १९९५ बम्बई संस्करण)

[आपने अपने लेखकी पुष्टिमें पं० योगेन्द्रनाथ तथा कॉवेल साहबके लेखोंका भी उदाहरण दिया है- लेखक]

१३ 'Tagore law lectures' 1870- p. 770.

एम० एम० के प्रिवी कौंसिलके निर्णयमें यह स्पष्टतया लिखा हुआ है कि क्षत्रिय अब भी भारतमें हैं और राजपूत भी उसी श्रेणीके हैं।

अतएव राजपूतोंको विदेशियोंकी सन्तान लिखना, आपका ईर्ष्या द्वेष प्रकट करता है।

द्वितीय प० पृष्ठ २७-२८में अग्रवालोंकी उत्पत्ति लिखते हुए इनके वैश्यत्वमें भी सन्देह किया है, परन्तु गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडीके सुप्रसिद्ध स्नातक, इतिहासवेत्ता डा० सत्यकेतु विद्यालङ्कार, डी० लिट्ने अपने ' अग्रवालोंका प्राचीन इतिहास ' नामक पुस्तकमें प्रबल प्रमाणोंसे सिद्ध किया है कि अग्रवाल क्षत्रिय हैं। कृपया उसे पढनेका कष्ट कीजिए।

द्वितीय प० पृष्ठ ७६ में आपने ' मौर्यों ' को शूद्र लिखा है। ' मौर्य ' सूर्यवंशी क्षत्रिय सिद्ध हो चुके हैं[१४]। इसपर विशेष लिखना पिष्टपेषण होगा।

आपने पुनः तृतीय परिच्छेद पृष्ठ १०८ में राजपूतोंके विरुद्ध लिखते हुए चन्देल, बुन्देल, गहरवार आदिको भी विदेशी माना है।

किन्तु चन्देल, बुन्देल, गहरवार भी शुद्ध क्षत्रिय हैं।

श्री चिन्तामण विनायक वैद्य एम० ए० ने अपने ' मध्य युगीन भारत ' भाग द्वितीय, प्रथम संस्करण, पृष्ठ २०५ से २१२ तक स्मिथके मतकी समीक्षा करते हुए चन्देलोंको शुद्ध क्षत्रिय बतलाया है।

राठौड और गहरवार एक ही हैं और सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं।[१५]

चतुर्थ परिच्छेद पृष्ठ ११९ से १२३ तक मनुस्मृति तथा पृष्ठ १२४ से १२५ तक शंख, याज्ञवल्क्य तथा वशिष्ठ स्मृतिके आधारपर मांस, मछली, आदि खानेका विधान सिद्ध करते हैं।

आप उसी पृष्ठ ११९ में एक चिन्त्य बात लिखते हैं कि ' वेदोंमें चावलका व्यवहार होना नहीं पाया जाता। '

आपका यह लिखना कि वेदोंमें चावलका व्यवहार होना नहीं पाया जाता सर्वथा भ्रमपूर्ण है। देखिये– " व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम्। एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ, मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च " अथर्व० ६।१४०।२)

अर्थः– हे दांतो ! तुम धान खाओ, जौ खाओ, माष (उडद) खाओ, तथा तिल खाओ। यह अन्न ही तुम्हारा हिस्सा है। इसके भक्षणसे तुम्हें रमणीय फल मिलेगा। तुम पिता और माताकी हिंसा न करो।

" यवे ह प्राण आहितो ऽपानो व्रीहिरुच्यते "
(अथर्व० ११।४।१३)

अर्थः— जौमें प्राण तथा धानमें अपान स्थित है।

" एनीर्धाना हरिणी श्येनी रस्या कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते " (अथर्व० १८।३५।४)।

यहां- हरिणी, श्येनी, रस्या, कृष्णा और रोहिणी प्रभृति धानोंके नाम आये हैं।

" अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः "
(अथर्व० ११।३।५)।

---

१४ देखो- प्रो० हरिश्चन्द्र सेठ एम० ए० कृत ' चन्द्रगुप्तमौर्य और एलेक्जेण्डरका भारतमें पराजय ', ' अशोक ', पण्डित सत्यकेतु विद्यालङ्कार कृत ' मौर्य साम्राज्यका इतिहास ', ओझाजी कृत ' राजपूतानेका इतिहास ', शिवपूजन सिंह कुशवाहा कृत ' कुशवाहा क्षत्रियोत्पत्ति मीमांसा ' ग्रन्थ।

१५ पं० रामकर्ण आसोपाकृत ' मारवाडका मूल इतिहास '; पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ कृत ' भारतके प्राचीन राजवंश ' तृतीय भाग; पुस्तकें देखिये; मासिक ' राजपूत ' आगरा सन् १९४४, ४५, ४६ के अङ्कोंमें प्रकाशित ' राठौड कुलोत्पत्ति मीमांसा ', ' राठौड कुलोत्पत्ति पर आपत्ति ', राठौडोंका गहरवार नाम ', ' गहरवारोंकी उत्पत्ति पर भ्रान्त्यालोचना ', ' गहरवारोंकी उत्पत्तिपर श्री गहरवारजीकी भ्रान्ति ' शीर्षक लेखोंको पढिए- लेखक

यहाँ चावल (तण्डुल) के कण, भूसी आदिका वर्णन है।

मनुस्मृतिके श्लोकोंके आधारपर आप मांसभक्षण सिद्ध करना चाहते हैं। जिन श्लोकोंका प्रमाण आपने प्रस्तुत किया है वे सबके सब प्रक्षिप्त हैं। प्रक्षिप्त, मैं नहीं कहता, वरन् वेद व्यास भी कहते हैं। यथा —

" सर्वकर्मस्वहिंसा हि महात्मा मनुरब्रवीत्।
कामकाराद् विहिंसन्ति बहिर्वेद्यां पशून्नराः॥
सुरा मत्स्याः पशोर्मांसं द्विजातीनां बलिस्तथा।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु कथ्यते "
(महाभारत शां० प० मोक्षधर्म, अ० २६६)

अर्थ— महात्मा मनुने सब कर्मोंमें अहिंसा बतलाई है। लोग अपनी इच्छाके वशीभूत होकर वेदीपर शास्त्र विरुद्ध पशुहिंसा करते हैं। शराब, मछली, मांस, द्विजातियोंका बलि, ये बात धूर्तोंने फैलाई है, वेदमें यह नहीं कहा गया है।

मनुस्मृतिके पञ्चम अध्यायके १७ श्लोक प्रक्षिप्त हैं। मांसभक्षण मनुकी उक्ति नहीं है। इसका निषेध मनुने स्वयं इसी अध्यायके ४३ वे से ५५ वें तक १३ श्लोकोंमें बडे बलपूर्वक किया है और इसकी बुराई, घृणितता, दूषितता, एवं पापता सब बतलाई है।

आप लिखते हैं:—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः॥
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति।
अनभ्यर्च्य पितृन्देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत्॥
(मनु० अ० ५ श्लो० ५१।५२)

अर्थ— जिसकी सम्मतिसे मारते हैं और जो अङ्गोंको काटके अलग अलग २ करता है। मारनेवाला तथा क्रय करनेवाला, विक्रय करनेवाला, पकानेवाला, परोसनेवाला तथा खानेवाला ये ८ सब घातक हैं॥ ५१॥ जो दूसरोंके मांससे अपने मांस बढानेकी इच्छा करता है, पितरों और देवताओं विद्वानोंकी मांस भक्षण निषेधाज्ञाका भङ्ग रूप अनादर करके, इससे बढकर कोई पाप करनेवाला नहीं॥ ५२॥

पुनः " यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्।
तद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः। "
(मनु० अ० ११ श्लोक ९५)

अर्थ— मद्य, मांस आदि यक्ष, राक्षस, पिशाचोंका भोजन है। देवताओंकी हवि खानेवाले ब्राह्मणोंको इसे कदापि न खाना चाहिए।

" न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥ "
(मनु० अ० ५ श्लोक ५६)

यह श्लोक भी वाममार्गका फैलानेवाला है और प्रक्षिप्त है।

स्वाभाविक बच्चेको तो मांससे घृणा होती है। यहां यह दिखलाया गया है कि मदिरापानमें दोष नहीं है, परन्तु मनु स्वयं इसे पाप बतलाते हैं और पीनेवालेके लिए कठिन प्रायश्चित्त नियत करते हैं:—

" सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत्।
तया सकाये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः॥ "
(मनु० अ० ११ श्लो० ९०)

अर्थ— जिस द्विजने मोह वश मदिरा पी लिया हो उसे चाहिए कि आगके समान गर्म की हुई मदिरा पीवे ताकि उससे उसका शरीर जले और वह मद्यपानके पापसे छूटे।

इसी अ० में मनुजीने ९१ से लगाकर ९४ श्लोक तक मद्यपानका प्रायश्चित्त कहा है। यदि मांस खानेमें दोष नहीं तो कुत्ते, बिल्ली और गधेका मांस क्यों नहीं खाते? मैथुनमें दोष नहीं तो माता, भगिनीके साथ मैथुनमें दोष क्यों समझा जाता है? प्रवृत्तिका अर्थ स्वभाव कीजिये तो फिर सब लोगोंको मांसाहारी होना चाहिए परन्तु सब लोग मांस नहीं खाते। स्वभाव नित्य है यदि प्रवृत्तिका अर्थ इच्छा करते हैं तो फिर दुःख अनिवार्य है क्योंकि इच्छाका पूर्ण न होना ही तो दुःख है, जब दुःख हुआ तो दोष अवश्य हुआ।

हाँ, वाममार्गमें सुरा, मैथुन, मांस पाप नहीं माना जाता है। अतएव यह मनुकृत नहीं, वरन् वाममार्गका सिद्धान्त है।

आगे आपके मनुस्मृति तृतीय अ० के २६७ से २७२ तकके श्लोकोंको अङ्कित करके श्राद्धमें ग्राह्य मांस दिखलाते हैं। परन्तु यह भी प्रक्षिप्त हैं।

गोमांसभक्षण चतुर्थ परिच्छेद पृष्ठ १२८ में आप लिखते हैं आर्य गोमांस भक्षक थे।

आर्योंपर गोमांस भक्षणका दोषारोपण वास्तवमें कलङ्क है १६।

"धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः" (मनु० २।१३) मनुके इस कथनसे धर्म जिज्ञासुओं के लिए वेद ही प्रमाण है। वेद स्वतः प्रमाण और अन्यान्य ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं।

अतएव पाठकवृन्द वेदोंका स्वाध्याय करें और निष्पक्ष होकर विचार करें कि वेदोंमें मांस खाना लिखा है या नहीं?

देखिए वेदमें मांसभक्षणका स्पष्ट विरोधः--

"य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः
गर्भान् खादन्तिकेशवास्तानितो नाशयामसि"
(अथर्व० ८।६।२३)।

अर्थः-- "जो आम मांस (कच्चे, घरमें पके, तथा गौके मांस) को खाते हैं, जो पौरुषेय क्रवि (पितृशक्ति और मातृशक्तिकी हत्यासे प्राप्त मांस) को खाते हैं, जो गर्भों (अण्डों तथा नवजात या छोटे २ पशु पक्षियों) को खाते हैं:- इस प्रकारके केशवों (जिनका शरीर कबरस्तान बना हुआ है) का, हम यहांसे नाश करते हैं।"

We ought to destroy them who eat *amamansa'* (Cooked as well as uncooked meat, and also the Cow- meat, and 'Pauruseya kavi' (meat involving the destruction of males and females), who eat factus (including eggs) and them who have thus made their bodies the graveyards.

यहां पर बडे अक्षर 'आम,' 'पौरुषेय,' 'गर्भ' और 'केशव' शब्द विचारने योग्य हैं।

आमः- आम मांसके तीन अर्थ हैं:-- (क) कच्चा मांस। इसके लिए देखो 'वाचस्पत्यकोष' यथा "आम्यते ईषत्पच्यते, आ-अम; ईषत्पक्वे, पाकरहिते॥

(ख) घरमें पका मांस। अमा=घर; निघण्टु अ० ३, खं० ४॥ अतः आम=घर सम्बन्धी अर्थात् घरमें पका हुआ।

(ग) गौका मांस। इस अर्थके लिए 'आम' शब्दपर 'आप्टे कोष' देखो।

पौरुषेयः-- पुरुष शब्दसे यहां पुरुष और स्त्री दोनोंका ग्रहण है।

"पुरुषश्च पुरुषी च पुरुषौ" इस प्रकार यहां "माता-पिता" सूत्रके आधारपर एक शेष मानना चाहिये। अतः पौरुषेयका अर्थ हुआ "पुरुष और स्त्रीकी हिंसासे प्राप्त।" इसलिए पौरुषेय क्रवि=पुरुष और स्त्रीकी हिंसासे प्राप्त मांस।" मांसके प्राप्त करनेमें या तो पितृशक्तिकी हिंसा होगी या मातृशक्तिकी। क्योंकि भूमण्डलमें प्राणी या तो पितृशक्ति सम्पन्न हैं या मातृशक्ति सम्पन्न।

गर्भः-- गर्भ=उत्पादनका जीवन-तत्त्व, तथा नवजात या छोटे छोटे पशु पक्षी।

केशवः -- "केशाः दुर्व्यसनानि सन्ति येषां ते केशवाः, 'केशाद्वोऽन्यतरस्यां' सूत्रसे 'केश' से 'व' प्रत्यय।

क= देह, और शव=मुर्दा। 'के' सप्तमी विभक्तिका एक वचन है। अतः केशवाः=वे मनुष्य जिनके देह अर्थात् पेटमें मुर्दे निवास करते हैं। 'क' का अर्थ शरीर है, इसके लिए देखो "वाचस्पत्य तथा आप्टेकोष।"

और भी मांस भक्षण विरुद्धमें अनेक मन्त्र हैं यहां विस्तार भयसे प्रदर्शित नहीं किया गया है।

इस वेद मन्त्रसे सिद्ध होता है कि गोमांस क्या अन्यान्य मांस खाना भी पाप है। अतएव वेद-विरुद्ध जिन ग्रन्थोंमें मांसका विधान है वे अमान्य हैं।

---

१६ इस विषयपर मैंने पूर्णरूपेण विचार किया है कि आर्य गोमांस भक्षक नहीं थे। इसके लिए देखो मेरा 'आर्यों-पर गोमांस भक्षणका दोषारोपण' शीर्षक लेख जो मासिकपत्र 'वैदिकधर्म' औंध, वर्ष २६, अगस्त १९४५ अङ्क ८ पृ० २२५ से २३३ तक प्रकाशित हुआ है।

आप पृष्ठ १२९ से १३१ तक "उत्तर रामचरित नाटक" से "सौधातिक और भाण्डायन संवाद देकर कहते हैं कि वसिष्ठ-ऋषिके लिए वाल्मीकि आश्रममें वत्सरी (बछिया) मारी गई थी।

समीक्षा— वेदोंके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं। 'उत्तर रामचरित नाटक' का यह प्रमाण वेदानुकूल नहीं है अतएव मानने योग्य नहीं।

'उत्तर रामचरित नाटक' में वाल्मीकि रामायणसे भिन्न बहुत सी बातें लिखी हुई है १७।

भवभूति कविका समय ७०० ई० के लगभग माना जाता है १८।

और वाल्मीकि ऋषिका समय तृतीय शतक ई० पूर्वसे भी पहलेका है १९।

अतएव 'रामचरित नाटक' से 'वाल्मीकीय रामायण' प्रामाणिक है।

वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है कि वसिष्ठ विश्वामित्र मांससे सत्कार नहीं करते थे।

यथाः- स्वागतं तव चेत्युक्तो वसिष्ठेन महात्मना।
आसनं चास्य भगवान्वसिष्ठो व्यदिदेश ह ॥२॥
उपविष्टाय च तदा विश्वामित्राय धीमते।
यथान्यायं मुनिवरः फलमूलमुपाहरत् ॥३॥
प्रतिगृह्य तु तां पूजां वसिष्ठाद्राजसत्तमः।
तपोऽग्निहोत्र शिष्येषु कुशलं पर्यपृच्छत ॥४॥
(वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड सर्ग ५२)

अर्थः— महात्मा वसिष्ठने 'तुम्हारा आना तो अच्छे प्रकार हुआ' यह कह और ऐश्वर्यवान् उसने इनके लिए आसन दिया। तब मुनियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठने बैठे हुए बुद्धि-मान् विश्वामित्रके लिए यथायोग्य फलमूलादि प्रदान किए। विश्वामित्रने वसिष्ठसे पूजाको ग्रहण करके तप, अग्नि और शिष्य वर्गों तथा वनस्पतिगणमें कुशल पूछा।

यहां महर्षि वसिष्ठने विश्वामित्रके लिए गाय, बैल नहीं मारा, किन्तु फल मूल दिया। [क्रमशः]

---

१७ देखो-मासिक 'कल्याण' गोरखपुरका 'श्री रामायणाङ्क' वर्ष ५, जुलाई १९३० ई० संख्या १ पृष्ठ ४७० में श्री जी० एन० बोधनकर एम० ए०, एल० एल० बी० का 'श्री राम कथामें एक अद्भुत पाठान्तर' शीर्षक गवेषणापूर्ण लेख। लेखक—

१८ देखो-प्रो० बलदेव उपाध्याय एम० ए० साहित्याचार्य कृत 'संस्कृत साहित्यका इतिहास' प्रथम संस्करण पृष्ठ ११८।

१९ वही पृष्ठ ४५।

ब्रह्म साक्षात्कार

(लेखांक २) अध्याय ३

लेखक— गणपतराव बा० गोरे, ३७३ मंगळवार 'बी', कोल्हापूर

पूर्व परिचय— ऋषि दयानन्द कृत ग्रंथोंको वेदके दृष्टिकोणसे देखनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि वेद मंत्रोंके अर्थ देवतानुसार करनेपर मंत्रोंसे सूर्योपासना ही सिद्ध होगी- न निराकार उपासना और न मूर्तिपूजा।

इसके अतिरिक्त सृष्टिविज्ञानके कई अद्भुत रहस्य, सूर्य चिकित्साके कई अनुपम योग तथा वेदके कई सनातन सिद्धान्त जिनपर हम आजतक अपनी अज्ञानताके कारण ही हंसी उडाते रहे हैं, अपने वास्तविक रूपमें प्रकट हो जाते हैं।

अध्याय १ का शीर्षक था- ' सूर्य ही वेदका एक अद्वितीय परमेश्वर है '

,, २ ,, ,, ' सूर्य ही द्युलोकमें रहते हुए सृष्टिको संभाले हुए है, निराकार परमात्मा नहीं। '

अब सहज ही शंका होती है कि जिस ओ३म् की महिमा वेदादिमें उपस्थित है, जिसे ऋषि दयानन्द तक सभीने परमात्माका सर्वोत्तम नाम समझा है, क्या वह ओ३म् भी साकार सूर्यका ही नाम है ? अध्याय ३ में इसीपर विचार करना है, और साथ ही देखना है कि आर्य समाजकी संध्याविधि ॐ को सूर्यसिद्ध करनेमें कहांतक सहायक है।

ओ३म् वा ब्रह्म साकार सूर्यका नाम है, निराकार परमात्माका नहीं !

अध्याय ३
संध्याके मंत्रोंकी साक्षी

खण्ड १-

सब वेद और देव सूर्यमें रहते हैं, निराकार परमात्मामें नहीं !

ऋषि दीर्घतमा औचथ्यः। देवता विश्वे देवाः।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्, यस्मिन्देवा अधि-
विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ऋ १।१६४।३९॥

अर्थ— (परमे) अत्यंत उच्च स्थानमें रहनेवाले (अक्षरे व्योमन्) अनश्वर ओम्=सूर्यमें (ऋचः) वेदकी ऋचाएं रहती हैं, (यस्मिन् अधि) जिस ॐ वा सूर्यके आधीन (विश्वे देवाः) सब चराचर देव, इन्द्रियां मुक्तात्माएं (निषेदुः) रहती हैं। (यः तत् न वेद) जो उस सूर्यको नहीं जानता वह (ऋचा किं करिष्यति) ऋचाओंका क्या करता है ? अर्थात् वह उनसे लाभान्वित नहीं होता। (यः इत्) जो निश्चयपूर्वक (तत् विदुः) उस ओम्=सूर्यको जानते हैं, (ते इमे) वे इसमें सम् आसते) समान-तया जा बैठते हैं, समान मुक्तिसुखसे लाभान्वित होते हैं ॥ ३९ ॥

स्पष्टीकरण— ऋ. ४।४०।५ में व्योमसत् पदका अर्थ भी सूर्य ही आया है। आपटेके कोशमें व्योमन् का अर्थ ' सूर्य-मंदिर ' है। जो ओ३म् को सूर्य समझता है वह मुक्त होकर सूर्यलोकको प्राप्त होता है। यतोऽभ्युदय०। वै० १।१।२ के अनुसार उसे धर्मपर आचरण करनेका पूर्ण फल प्राप्त होता है। सिद्ध हुआ कि सूर्य ही ब्रह्म वा परमेश्वर है।

टीप— लेखांक १ के अध्याय १-२ अगस्तके अंकमें प्रकाशित हुए हैं, उनका मुख्य शीर्षक भी ' ब्रह्म साक्षात्कार ' समझा जाय।

खण्ड २–

जो पुरुष [ईश्वर-जीव-शरीर] सूर्यमें है वही मनुष्यमें है।

ऋषि दधीचि। देवता आत्मा।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।
ओ३म् खं ब्रह्म॥ वा० य० ४०।१७॥

अर्थ— (हिरण्मयेन पात्रेण) ज्योतिर्मय पात्रसे (सत्यस्य मुखम्) सूर्यका मुख (अपिहितं) ढका है। (यः असौ) जो यह (आदित्ये पुरुषः) सूर्यमें रहनेवाला पुरुष है, (सः असौ अहम्) वह यह मैं हूं। (ॐ खं ब्रह्म) अर्थात् मैं ओम् आकाशस्थ ब्रह्म ही हूं॥१७॥

स्पष्टीकरण—'आत्मा' पदसे ईश्वर, जीव तथा प्रकृति वा शरीर तीनोंका ग्रहण होता है। यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे= जो अपने शरीरमें है वही ब्रह्मअण्ड= बडे अण्डे=सूर्यमें है अपना शरीर जिस प्रकार ईश्वर-जीव-प्रकृतिका पुञ्ज है, उसी प्रकार ब्रह्म वा सूर्य भी है, ऐसा कथन करनेके लिए मंत्र मनुष्यको सिखा रहा है- जिस अहं ब्रह्मास्मि वाक्यका कई लोग खण्डन करते हैं, उसीका मूलाधार यह वेदमंत्र है।

ऋग्वेद १०।१७०।२ में सूर्यको सत्यम् कहा है, तथा ऋग्वेद २।१६४।४६ में एकं सत् इसीलिये सत्यस्य का अर्थ सूर्यस्य= सूर्यका किया गया है।

अहं ब्रह्मास्मि

जहां ईश्वर जीव प्रकृतिकी सब शक्तियाँ पूर्ण रूपेण विद्यमान रहती हैं वह ॐ=सूर्य= पर ब्रह्म है। मनुष्यादि प्राणियोंमें अंश रूपमें है, तथापि वह ब्रह्म है ऐसा वेदका सिद्धान्त है, देखिए—

ऋषि कौरुपथिः। देवता अध्यात्मं।

तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते।
सर्वाह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते॥
॥ अ० ११।८।३२॥

अर्थ— (तस्मात्) इसीलिए (विद्वान्) ज्ञानी मनुष्य (वै) निश्चयसे (इदं पुरुषं) इस सूर्य पुरुष वा प्राणी पुरुषको (ब्रह्म इति मन्यते) यह ब्रह्म है, ऐसा मानता है। क्यों ? इस कारण कि (हि सर्वाः देवताः अस्मिन् आसते) निश्चयपूर्वक सब देवताएं=दिव्य शक्तियां इसमें निवास करती हैं, (इव गावः गोष्ठे) जैसी गौवें गोशालामें रहती हैं॥३२॥

स्पष्टीकरण— विद्वान् ही कह सकता है कि अहं ब्रह्मास्मि तत् त्वमसि=जो ब्रह्म मैं हूं वही ब्रह्म तू है। अभिप्राय तो इतना ही था कि मनुष्य अपनेको ईश्वर जीव प्रकृतिकी शक्तियोंका पुञ्ज समझकर चाहे जिस शक्तिको बढा लेता, स्वयं सुखी होता अन्योंको सुखी करता। परन्तु मूर्खोंने ऐसा समझा कि ब्रह्म कहलानेके बाद मनुष्य शुभाशुभ कर्मोंके बन्धन में ही नहीं आता! और इस भ्रमके कारण लगे कुकर्म करने।

तत् त्वमसि

स आत्मा तत् त्वम् असि श्वेतकेतो।
॥ छां० उ० प्र० ६ खण्ड १६॥

अर्थ— (श्वेतकेतो) हे श्वेतकेतु! (स आत्मा) वह सूर्य आत्मा है, = ईश्वर-जीव-प्रकृति-पुञ्ज है, (तत् त्वम् असि) वही तू है॥१६॥

द्वैतवादको खैंच निकालनेके लिए स्व० म० नारायण स्वामीने अर्थ किया है— 'वह आत्मा है; हे श्वेतकेतु! तू उसी (आत्मा) का है।'

वेदके अनुसार ज्ञानी मनुष्य ही इन वाक्योंका सदुपयोग कर सकता है— यही सत्य है। यदि सच्चे अहं ब्रह्मास्मि-तत् त्वमसि कहनेवाले आज राष्ट्रमें उत्पन्न हो जाएं, तो अस्पृश्यताका कलंक आर्य जातिके माथेसे कुछ ही दिनोंमें धुल जाय।

विषयबाह्य परन्तु विवादास्पद प्रश्न था, इसलिए वेद द्वारा प्रकाशित करना आवश्यक हुआ।

खण्ड ३–

'ब्रह्म' नाम साकार सूर्य वा प्राणियोंका है।

लेखक लगभग २५ वर्ष अज्ञानवश ब्रह्म को निराकार मानता रहा है, परन्तु—

त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममतत् ॥ श्वे० उ० १।९ ॥

अर्थ— (त्रयं) तीनों अर्थात् ईश्वर, जीव, प्रकृति (यदा विन्दते) जहां एकत्र होते हैं (ब्रह्मम् एतम्) वही ब्रह्म है ॥ ९ ॥

अन्तर इतना ही है कि साकार सूर्य, पुरुष, वा आत्मा परब्रह्म वा परमात्मा वा पूर्ण पुरुष इसलिए कहलाता है, कि उसमें तीनोंकी शक्तियां पूर्ण रूपसे विद्यमान है। मनुष्यादिमें वही शक्तियां अंश रूपसे विद्यमान हैं। इसी कारण मनुष्यके लिए सूर्योपासना अनिवार्य हुई. साथ ही सिद्ध हुआ कि ब्रह्म निराकार परमात्माका नाम नहीं है, और न उसकी पूजा करनेकी विधि वेदने बताई है ! यदि जगतका कोई एक अभिन्न निमित्तोपादान कारण है, तो वह ईश्वर-जीव-प्रकृति-पुञ्ज सूर्य ही हो सकता है, निराकार परमात्मा नहीं।

खण्ड ४-

ओ३म् नाम भी साकार सूर्य (ईश्वर+जीव+प्रकृति पुञ्ज) का है।

'ओ३म्' को भी लेखक वर्षोंतक 'निराकार परमात्मा' मानता रहा, परन्तु यह भ्रम ही था। ओम् साकार चेतन देव है, यथा—

ओ३म् तद् ब्रह्म। ॐ तद्वायुः। ॐ तदात्मा। ॐ तत्सत्यं। ॐ तत्सर्वं। ॐ तत्पुरो नमः। ॐ अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्व मूर्तिषु ॥ त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमिन्द्रस्त्वꣳरुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं ब्रह्म। त्वं प्रजापतिः त्वं तदापः आपो ज्योतिर्रसो अमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरोम् स्वाहा ॥ तैत्ति० आरण्यक प्रपा० १० के मंत्र ६८ तक से ॥

अर्थ— वह ब्रह्म=महान सूर्य ॐ है। वह वायु ॐ है। वह आत्मा ॐ है। वह अविनाशी ॐ है। वह सर्व=पूर्ण= सब कुछ ॐ कहलाता है। (तत् पुरः) उस सबको सुरक्षित रखनेवाले गढ वा मुक्तिस्थान सूर्य वा ॐ के लिए ही (नमः) नमस्कार वा पूजा होती है। (ॐ अन्तः भूतेषु) वह सूर्य सब चराचर भूतोंमें तथा (विश्व मूर्तिषु गुहायां चरति) सब मूर्त पदार्थोंके गुप्त-स्थानोंमें संचार कर रहा है- व्यापक हो रहा है।

टीप— सूर्य वा ॐ सर्वव्यापक है, निराकार परमात्मा नहीं ! तत्=वह दूर रहनेवाले सूर्यका बोध करता है। उस ब्रह्म=ॐ=सूर्यमें वायु, जीवात्मा, परमात्मा और प्रकृतिके पांचों तत्व समाए हुए हैं, तो भी वह अनश्वर है। आगे उसीको 'त्वं' पदसे संबोधन किया है, यथा—

अर्थ— हे ॐ वा सूर्य ! तू ही यज्ञ है, (त्वं वषट्कारः) तू ही स्वाहा वा आहुति है, (त्वं इन्द्र.) तू ही सुख-वृष्टिकारक है, (त्वं रुद्रः) तू ही दुःख देकर रुलानेवाला है, (त्वं विष्णुः) तू ही सर्वव्यापक है, (त्वं ब्रह्म) तू ही ईश्वर, जीव, प्रकृति-पुञ्ज है। (त्वं प्रजापतिः) हे सूर्य ! तू ही प्रजापालक है, (त्वं तत् आपः) तू ही वह आकाश तथा (आपः ज्योतिः) आकाशका दीप है, (अमृतं रसः) अनश्वर पदार्थों अर्थात् ईश्वर, जीव प्रकृतिका रस, काढा, कषाय= Decoction भी तू ही है; (ब्रह्म भूः भुवः स्वः ओ३म्) हे ॐ वा सूर्य ! तू ही पृथिवी लोक अन्तरिक्ष तथा द्युलोक तथा ब्रह्म कहलाता है— अथवा तू ही आदित्य, वायु, अग्नि पुञ्ज वा तू ही उत्पत्ति स्थिति प्रलय है। (स्वाहा) तेरे लिए ही स्वाहाकार वा हवन यज्ञ किया जाता है।

पाठको ! यहां ॐ वा ब्रह्म साकार सूर्य ही सिद्ध हो रहा है, निराकार परमात्मा नहीं। त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारः, त्वं तदापः आपो ज्योतिः का समर्थन गीतामें भी आया है।

खण्ड ५—

ओ३म् वा ब्रह्मको श्रीकृष्ण भी साकार सूर्य ही समझते थे !

श्रीकृष्ण गीतामें सूर्यकी भूमिकासे उपदेश कर रहे हैं- अपनेको ॐ वा ब्रह्म समझकर- अहं ब्रह्माऽस्मि का सक्रिय समर्थन करते हुए बोल रहे हैं। क्यों न बोलें ? पुत्र पिताके नाम तथा गोत्रको क्या आज भी नहीं धारण करता ? लेख बढ न जाए, इसलिए संस्कृत श्लोक न देकर केवल श्री पं० सातवळेकर कृत **श्रीमद्भगवद्गीता** से भाषार्थ ही उद्धरित करता हूं—

१. 'ओं तत् सत्' ऐसा ब्रह्मका तीन प्रकारसे निर्देश किया जाता है ॥ गीता १७।२३ ॥

२. सब वेदोंमें प्रणव अर्थात् ओंकार मैं हूं ॥ ७।८ ॥

३. ओंकाररूपी एकाक्षर ब्रह्म ॥ ८।१३ ॥

४. (यज्ञमें) अर्पण (की क्रिया) ब्रह्म है, हवनकी वस्तु ब्रह्म है, ब्रह्मरूप अग्निमें ब्रह्मने हवन किया है, (इस प्रकार) जिसकी बुद्धिसे सभी कर्म ब्रह्मरूप हुए हैं, वह ब्रह्मको ही प्राप्त करता है ॥ ४।२४ ॥

५. ईश्वरका स्वरूप।

मैं क्रतु, यज्ञ, स्वधा, औषध, मंत्र, घृत, अग्नि और हवनकर्म हूं ॥१६॥ मैं इस जगतका माता, पिता, धारणकर्ता, पितामह, ज्ञेयवस्तु, पवित्र वस्तु, ओंकार ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद हूं ॥ १७ ॥ मैं अन्तिम गति, पोषण कर्ता, स्वामी, साक्षि, निवासस्थान शरण जाने योग्य, मित्र, उत्पत्ति-कर्ता, लयकर्ता, मध्यकी अवस्थिति अर्थात् सबको रहनेके लिए स्थान देनेवाला, भण्डार और अविनाशी बीज हूं ॥ १८ ॥ हे अर्जुन ! मैं (सूर्यरूपसे) तपता हूं, मैं पर्जन्यको रोकता हूं और पर्जन्यको गिराता भी हूं। मैं अमरता हूं और मृत्यु भी हूं। मैं सत् और असत् हूं ॥ १९ ॥' (श्रीमद्भगवद्गीता-पुरुषार्थ बोधिनी अ० ९)

भावार्थ— पाठक वृन्द ! श्री पं० सातवलेकरजीने जो अपनी ओरसे उक्त श्लोकोंपर 'ईश्वरका स्वरूप' ऐसा शीर्षक दिया है, वह बडा ही महत्वपूर्ण है। दो शब्दोंमें कहना हो तो कहो कि ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है= सत्=प्रकृति+चित्=जिवात्मा+आनंद=परमात्माका मिश्रण मेल है, जिसे ब्रह्म वा सूर्य कहते हैं। यदि जगदोत्पादक पालक संहारक कोई एक परमेश्वर है तो वह उक्त अर्थोंमें ही सच्चिदानन्द स्वरूप होना चाहिए। निराकार परमात्मा तो सूर्य वा ब्रह्मका एक घटकावयव=अंश= Conituent eeement है, अतः अंशसे पूर्ण सृष्टि कदापि उत्पन्न हो नहीं सकती !

इसी युक्तिसे सूर्य वा ब्रह्म वा ॐ जगतका अभिन्न निमित्तोपादान कारण सिद्ध होता है, कारण चराचर जगत् इसी एकसे ओ बना है। यही वैदिक सिद्धान्त है।

वा० य० २।२६ के अनुसार सूर्य स्वयंभूः= अपनी शक्तिसे उत्पन्न है। ऋ १।७०।२ के अनुसार वह स्वार्धाः= अपनी शक्तिसे विराजमान कहलाता है। अ० १७।१।२२-२३ के अनुसार वह स्वराट् अपनी शक्तिसे चमकनेवाला है। जो स्वयंभूः होगा वही सृष्टिको उत्पन्न कर सकेगा। जो स्वार्धाः=स्वतन्त्र होगा वही जीवोंको कर्म करनेकी स्वतंत्रता दे सकेगा, और सर्वाधार कहला सकेगा। जो स्वराट्= स्वप्रकाशक होगा वही जीव प्रकृतिको प्रकाशित कर सकेगा। वेदने ये तीनों गुण सूर्यके बताए हैं, निराकार परमात्माके नहीं ! अतः वही ॐ ब्रह्म वा परमेश्वर है, निराकार परमात्मा नहीं !

ऋ. ४।४०।५ में सूर्यका एक नाम व्योम् सत्=ॐ सत् लिखा है, अत: ॐ के साकार सूर्य होनेमें कुछ भी शंका नहीं ! ऋ १०।९० में इसी सूर्य पुरुषसे सृष्टिके उत्पन्न होनेका सविस्तर वर्णन आया है, जिसका समर्थन गीताके उपरोक्त श्लोक कर रहे हैं।

खण्ड ६-

ओ३म् वा ब्रह्मको ऋषि दयानन्द भी साकार सूर्य ही समझते थे !

१. प्रत्यक्ष ब्रह्म।

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि ॥ तैत्ति० उ० १।१।१ ॥

अर्थ- ब्रह्मको नमस्कार हो, वायुको नमस्कार हो, तू ही प्रत्यक्ष ब्रह्म है। (त्वाम् एव) तुझको ही (प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि) मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहता हूं, (ऋतं वदिष्यामि) दिव्य सूर्य कहता हूं, (सत्यं वदिष्यामि) अविनाशी कहता हूं ॥ १ ॥

स्पष्टीकरण— ऋषि दयानन्दने इसी मंत्रसे सत्यार्थ प्रकाशका आरंभ और अन्त किया है, कारण सृष्टि सूर्यसे ही उत्पन्न होकर उसीमें लीन होती है। यहां ब्रह्म, वायु, और दिव्य सूर्यको एक मानकर उसे नमस्कार किया गया है, और उसे अविनाशी प्रत्यक्ष ब्रह्म समझा गया है।

२. प्रसिद्ध उत्तम सदा उपस्थित परमेश्वर।

प्रश्न— 'परमेश्वरसे भिन्न अर्थोंके वाचक विराट् आदि नाम क्यों नहीं ? ब्रह्माण्ड पृथिवी आदि भूत, इन्द्रादि देवता और वैद्यक शास्त्रोंमें शुण्ठ्यादि ओषधियोंके भी ये नाम हैं वा नहीं ?

उत्तर– हैं, परन्तु परमेश्वरके भी हैं।

प्रश्न–– केवल देवोंका ग्रहण इन नामोंसे करते हो वा नहीं ?

उत्तर– आपके ग्रहण करनेमें क्या प्रमाण है ?

प्रश्न — देव सब प्रसिद्ध और वे उत्तम भी हैं, इससे मैं उनका ग्रहण करता हूँ।

उत्तर— क्या परमेश्वर अप्रसिद्ध और उससे कोई उत्तम भी है ? पुनः ये नाम परमेश्वरके भी क्यों नहीं मानते ? जब परमेश्वर अप्रसिद्ध नहीं और उसके तुल्य भी कोई नहीं, तो उससे उत्तम कोई क्योंकर हो सकेगा।...

' उपस्थितं परित्यज्यानुपस्थितं याचत इति बाधितन्यायः '

अर्थ — उपस्थित पदार्थको छोडकर अनुपस्थितकी इच्छा करना बाधित=विसंगत न्याय कहाता है। '

(सत्यार्थ प्र० स० १)

स्पष्टीकरण— कई आर्यसमाजी गीताको वेदानुकूल नहीं मानते, परन्तु पाठक देखें कि जिस प्रकार श्रीकृष्णने ॐ को उपरोक्त अर्थोंमें ईश्वर-जीव-प्रकृति-स्वरूप माना है, ठीक उसी बातको ऋषि दुहरा रहे हैं। ईश्वर जड प्राकृत पदार्थोंके नामोंको तभी तो धारण कर सकेगा, जब उसमें प्रकृति सम्मिलित होगी। साथ ही ऋषि ईश्वरको प्रसिद्ध= प्रत्यक्ष, उत्तम=सबसे ऊंचा, उपस्थित=विद्यमान भी समझते हैं, जो साकार सूर्य ही है, निराकार परमात्मा नहीं!

३ ॐ ईश्वर+जीव+प्रकृति-पुञ्ज+साकार सूर्य ही है!

" (ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वरका सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें जो अ, उ, म् ये तीन अक्षर मिलकर एक (ओम्) समुदाय हुआ है, इस एक नामसे परमेश्वरके बहुतसे नाम आते हैं, जैसे—

अकारसे- विराट्, अग्नि, विश्व।

उकारसे- हिरण्यगर्भ, वायु, तैजसादि।

मकारसे- ईश्वर, आदित्य, और प्राज्ञादि नामोंका वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्य शास्त्रोंमें स्पष्ट व्याख्यान किया है, कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वरके ही हैं।" (सत्यार्थ प्र० स० १)

इन नामोंके अर्थ आपटेजीके कोशमें

अ= विष्णु, उः= शिव, मः, काल, ब्रह्म।

अ= विराज्, विराट्, सूर्य, ब्रह्मा। अग्नि= हर प्रकारका ताप, गरमी, आग। विश्व= whole पूर्ण [सूर्य], विश्व-व्यापी। विश्वं= विष्णु, शुण्ठ। विश्वः= आत्मा। विश्वात्मन्= Soul of the universe [सूर्य]।

उ= To Sound= शब्द करना, पूछना, दबा करना वा अधिकारपूर्वक मांगना (वेदमें) उ= शिव, ब्रह्मा। हिरण्यगर्भ= ब्रह्माका नाम, विष्णुका नाम, जीव सूक्ष्म शरीरसहित। वायुः= हर प्रकारका वायु, यथा प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान। तैजस= Bright=तेजस्वी, प्रकाशमान, प्रकाशपूर्ण। तैजसं= घी, तीव्रता, बल, शक्ति।

म= ईश्वर= स्वामी, राजा, ऐश्वर्यवान् पुरुष, आत्मा, परमात्मा। आदित्य= अदिति वा उषाका पुत्र [सूर्य]। मुख्य आदित्य सात थे, जो बादमें बारह कहलाने लगे। ये बारह राशियां बारह महीनोंमें सूर्यके ही बारह नाम हैं, यथा–

धाता, मित्र, अर्यमा, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान, पूषा, सविता, त्वष्टा, विष्णु [ये सब नाम सूर्यके हैं, और वेदमें आज भी उपस्थित हैं, अतः ' पहले वेदकालमें ७ आदित्य थे फिर ब्राह्मणकालमें १२ बनाए गए ' इस कोशकारके विचारसे लेखक सम्मत नहीं।] प्राज्ञ = बुद्धिविषयक, ज्ञानवान्। प्राज्ञः = ज्ञानवान पुरुष [सूर्य] प्राज्ञी = सूर्यपत्नी वा उषाका नाम॥ आपटे॥

स्पष्टीकरण— ऋषिने ॐ को समुदाय = ठोस पदार्थ = अनेकोंके मेलसे बना हुआ माना है अतः वह निराकार नहीं हो सकता। यही बात कोशकारके अर्थोंसे भी परिपुष्ट हो रही है। फिर इनमें अनेकों शब्द सूर्यकी ओर स्पष्ट संकेत कर रहे हैं, अतः ॐ के सूर्य होनेमें संदेह नहीं। अ, उ, म् के अर्थोंमें ब्रह्मा विष्णु महेश, जीवात्मा, परमात्मा, सूर्यके अनेकों नाम उषा, अदिति, तथा स्थूल-प्रकृतिजन्य अनेकों पदार्थ झलक रहे हैं, अतः ' ओ३म् ' को निराकार परमात्मा समझना दुराग्रह मात्र ही है। ' ओ३म् ', ईश्वर-जीव-प्रकृतिके समुदायका ही नाम है जो प्रत्यक्ष ब्रह्म वा सूर्य ही है।

४ ओ३म् सच्चिदानन्द स्वरूप है।

अ- परमात्मा, उ- जीवात्मा, म्- प्रकृति।
अ- आनंद, उ- चित्, म्- सत्।
अ- पृथिवी, उ- अन्तरिक्ष, म्- द्युलोक।
अ- मनुष्यलोक, उ- चन्द्रलोक (पितृलोक), म्= सूर्य लोक (देव लोक)।
अ- ऋग्वेद, उ- यजुर्वेद, म्- सामवेद।
अ- तप (ब्रह्मचर्य), उ- ऐश्वर्य, म्- मुक्ति।

(संध्या प्रदीपिका १ ला संस्करण पृ ९६-९८)

अ, उ, म् के उपरोक्त अर्थ सर्वमान्य हैं, अतः अधिक विस्तारकी आवश्यकता नहीं। प्रकृतिका मुख्य गुण सत् है, जीवका सत्+चित्=सच्चित्, और परमात्माको सत्+चित्+आनंद स्वरूप=सच्चिदानन्द स्वरूप कहते हैं, और यह भी सर्वमान्य है। अब पाठक ही विचारें कि यह स्वरूप निराकार परमात्माका है वा साकार सूर्यका ? सत् वा प्रकृति ही सर्वव्यापक सिद्ध हो रही है।

पुनः सिद्ध हुआ कि ओम्=ब्रह्म=सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा सुप्रसिद्ध सूर्य का ही नाम है। यही जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है।

५. 'ओ३म्' का अर्थ 'रक्षा करनेवाला' है।

पंचमहायज्ञ विधिमें 'संध्याशब्दानामार्थ निर्देशः' के अन्तरगत ऋषि दयानन्दने 'ओम्' का अर्थ 'रक्षा करनेवाला' लिखा है। रक्षा ईश्वरसे, जीवसे वा प्रकृतिके कोपसे अभीष्ट है, और जिस पदार्थमें ये तीनों पूर्णतया समाविष्ट हो वही एक पदार्थ इनसे रक्षा करा सकेगा। वह एक पदार्थ सूर्य ही हो सकता है, जो कि ईश्वर-जीव-प्रकृति-पुञ्ज है। उसीसे रक्षाकी प्रार्थना, याचना की जाती है। उसीको प्रसन्न करनेके निमित्त हवन यज्ञ किए जाते हैं। निराकार परमात्मा तो सूर्यका एक घटकावयव= Component limb ही है!

खण्ड ७-

'ओ३म्' वा सूर्य ही भूर्भुवःस्वः है, निराकार परमात्मा नहीं!

(१) ऋषि दयानन्दका समर्थन

(१) भूः भुवः स्वः ॥ तैत्ति० आरण्यक प्रपा० ७ अनु० ५॥

अर्थ— ऋषिकृत- 'भूरिति वै प्राणः'। 'यः प्राणयति चराचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः।

शब्दार्थ— (वै भूः प्राणः इति) निश्चयसे भूः- अस्तित्व वा सृष्टि-उत्पादक प्राण है। (यः प्राणयति चराचरं जगत्) जो सजीव निर्जीव जगत्को प्राण देता वा उत्पन्न करता है, (स भूः स्वयम्भूः ईश्वरः) वह उत्पादक प्राण-स्वसत्तासे उत्पन्न होनेवाला परमेश्वर है।

'भुवरित्यपानः'। 'यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः'

शब्दार्थ— (भुवः इति अपानः) भुवः नाम मृत्युका है। (यः सर्वं दुःखं) जो सब दुःखोंको (अपानयति) उच्छ्वासके साथ बाहर फेंक देता है, अर्थात् जो मृत्यु द्वारा दुःखसे तड़पते प्राणीको शांति देता है, (स. अपानः) उसको अपान कहते हैं।

'स्वरिति व्यानः'। 'यो विविधं जगत् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः'।

शब्दार्थ— (स्वः इति व्यानः) स्वः नाम व्यापक देव का है। जो इस चित्र विचित्र जगत्में सर्वत्र भरा हुआ है, जो उसे व्याप रहा है, उसे व्यानः- सर्वव्यापक कहते हैं।

स्पष्टीकरण— ऋषिकी व्याख्याके अनुसार ॐ भूर्भुवःस्वःका अर्थ है, सूर्य उत्पादक, मारक सर्वव्यापक है। सत्यार्थ प्र० स० ३ में संस्कृत व्याख्या देखिए। शब्दार्थ लेखकके हैं। अब इन अर्थोंका फैलाव देखिए—

१. ओम् वा सूर्य प्राण अपान व्यान हैं—
निराकार परमात्मा नहीं।

२. ,, ,, ,, ब्रह्मा, शिव, विष्णु हैं
निराकार परमात्मा नहीं।

३. ,, ,, ,, उत्पादक, मारक, व्यापक हैं
निराकार परमात्मा नहीं।

४. ,, ,, ,, सृष्टि, प्रलय, स्थिति हैं
निराकार परमात्मा नहीं।

पंचमहायज्ञ विधिमें ऋषिने इन्हीं अर्थोंको अधिक खोला है।

आपटेके कोशमें प्रलयः का अर्थ 'ओम्' लिखा है।

(२) संध्यारहस्यमें पं० चमुपतिजीका मत।

'स्वामीजी प्राणका अभिप्राय जगत्प्राण परमात्मा लेते हैं। अपानसे दुःखोंका अपनयता (दूरीकर्ता) जगदीश, और व्यानसे जगद्व्यान (सर्वव्यापक प्रभु)' आगे लिखते हैं—

भूः- ऋग्वेद, भुवः-यजुर्वेद, स्वः- सामवेद, और इन तीनों विद्याओंसे पूर्ण अथर्ववेद।

भूः- पृथिवी, भुवः-अन्तरिक्ष,-आकाश, स्वः- द्युलोक अर्थात् सूर्यादि।

भूः- प्राण, अर्थात् जो श्वास हम अन्दर लेते हैं।

भुवः- अपान, अर्थात् जो श्वास बाहर जाता है।

स्वः- व्यान, प्राण जो सारे शरीरमें है।

(संध्या रहस्य चतुर्थवार पृ० ७३-४)

अब इनके आधारपर ॐ भूर्भुवः स्वः के अर्थ होंगे—

५. ॐ- सूर्य ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और इन तीनों विद्याओंसे पूर्ण अथर्ववेद है, निराकार परमात्मा नहीं।

६. ॐ- सूर्य ही पृथिवी अन्तरिक्ष तथा द्युलोक अर्थात् सूर्यादि है— त्रिभुवन है — निराकार परमात्मा नहीं।

७. ॐ- सूर्य ही जगत्प्राण, दुःखोंका अपनयता, जगद्व्यान है, निराकार परमात्मा नहीं!

८. ॐ- सूर्य ही अंदर लिया हुआ, बाहर निकाला हुआ तथा सारे शरीरमें रमा हुआ प्राण है, निराकार परमात्मा नहीं!

स्पष्टीकरण— ॐ वा साकार सूर्य ही वेद है, वही पृथिवी अन्तरिक्ष द्युलोक है, वही जगत्प्राण, जगद्व्यान, जगदपान है, वही प्राणियोंके शरीरोंमें १० प्राणवायु बनकर उपस्थित रहता है। यहां ऐसा लेख नहीं है कि ॐ ने प्रकृतिसे पृथिवी आदि बनाए, अपितु ऐसा लिखा है कि ॐ ही स्वयं पृथिव्यादि बना! यह तभी संभव होगा जब पृथिवी आदि ॐ के घटकावयव होंगे। ईश्वर, जीव, प्रकृति साकार सूर्य वा ब्रह्ममें ही उपलब्ध हैं, और यही साकार ओ३म् है।

(३) संध्योपासनामें पं० सातवलेकरजीके अर्थ!

भूः भुवः स्वः- सत्ता, ज्ञान आनंद। सत्, चित् आनंद। सत्व। सुविचार। आनंद।

॥संध्यो० तृतीयवार पृ० ३१॥

भूः- अस्तित्व, सत्,- Existence.

भुवः- ज्ञान, चित्- Knowledge

स्वः- आत्मा, आनंद- Self, Bliss ॥ पृ० १३१॥

(भूः- सत्ता) सत्। (भुवः- अवकल्पनं) चित्, चिन्तन, कल्पना। (स्वः) आनंद ॥ पृ० २११॥

ॐ भूर्भुवः स्वः। (ॐ) उत्पत्ति स्थिति प्रलयकर्ता, (भूः) सत् (भुवः) चित् और (स्वः) आनंदस्वरूप ॥ पृ० १११॥

(४) प्रकृतिका जीव-ईश्वरपर प्राबल्य।

प्रकृति सत्, जीव सत्+चित्, तथा ईश्वर सत्+चित्+आनंद स्वरूप माना जाता है, विशेषतः आर्यसमाजमें, परंतु इस सिद्धान्तपर निम्न आक्षेप हो सकते हैं—

क— यदि प्रकृतिको सत्, जीवको सचित् और ईश्वरको सच्चिदानन्द स्वरूप माना जाय, तो प्रकृतिका प्राबल्य जीव तथा ईश्वर दोनोंपर स्वीकार करना चाहिए, परन्तु विशेषतः आर्यसमाजी यह बात नहीं मानते, और साथ ही इस सिद्धान्तको भी सत्य जानते हैं। बताइए सत्-प्रकृति जीव ईश्वरका प्रथम भाग है वा नहीं?

ख— ऐसा माननेसे प्रकृति वा सत्, जीव तथा ईश्वर दोनोंमें व्यापक होनेसे सर्वव्यापक सिद्ध होगी, ईश्वर सर्वव्यापक न रहेगा।

ग— ऐसा माननेसे प्रकृति जीव तथा ईश्वर दोनोंकी धारण करनेवाली सिद्ध होनेसे वही सर्वाधार सिद्ध होगी, ईश्वर सर्वाधार न रहेगा।

(५) आर्यसमाजके नियम बदलने पडेंगे!

ऐसा माननेसे आर्यसमाजके नियमोंको इस प्रकार बदलना सुसंगत ही नहीं, अत्यावश्यक भी होगा—

नियम १— सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल प्रकृति है।

नियम २— सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर निराकार नहीं हो सकता। अतः अजन्मा, निर्विकार भी नहीं रह सकता। प्रकृति ही सर्वशक्तिमान, दयालु, अनन्त, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र, और सृष्टिकर्ता सिद्ध होगी।

नियम ३— वेद सब प्राकृत विद्याओंका पुस्तक सिद्ध होगा।

नियम ४— इस प्रकार अर्थ रखेगा— 'प्राकृतके ग्रहण करने और अप्राकृतके छोडनेमें सर्वदा उद्यत रहना चाहिए'।

नियम— ५ होगा 'सब काम धर्मानुसार अर्थात् प्रकृति और अप्रकृतिको विचारके करने चाहिये'।

(६) वेदमंत्रका नास्तिकवादी अर्थ !

ये ही कपिलका प्रकृतिवाद वा सांख्य दर्शन है, जो कि नीरीश्वरवादी भी माना जाता है। इसीके अनुसार वेद-मन्त्रोंको भी ढाला जा रहा है। एक उदाहरण लीजिए—

ऋषि ब्रह्मा। देवता वाम', अध्यात्मं, आदित्यः।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ ऋ० १।१६४।२० ॥

ऋ. १।१६४। २० में ऋषि दीर्घतमा औचथ्यः देवता विश्वेदेवाः है॥

अर्थ— म० नारायण स्वामीजीका मुण्डकोपनिषदमें "(सयुजा) साथ रहनेवाले (सखाया) मित्रके समान (द्वा) दो (सुपर्णा) पक्षी (समानम्) एक ही (वृक्षम्) वृक्षको (परिषस्वजाते) आश्रय करते हैं। (तयोः) उन दोनोंमेंसे (अन्यः) एक (जीवात्मा) (पिप्पलम् स्वादु) स्वादिष्ट फलोंको (अत्ति) खाता है, (अन्यः) दूसरा (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभिचाकशीति) देखता है॥ २०॥"

व्याख्या में महात्माजी लिखते हैं— '...प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ यह ब्रह्माण्ड एक पेडके सदृश है। इस पेडपर दो पक्षी हैं, जिनमेंसे एक वृक्षके स्वादिष्ट फलोंको खाता है, और दूसरा न खाता हुआ साक्षी मात्र है। ...जीव वह पक्षी है, जो फलोंको खाता है, और साक्षीमात्र रहनेवाला पक्षी ईश्वर है। मन्त्रमें प्रयुक्त 'सयुजा' और सखाया शब्द ईश्वर और जीव दोनोंके विशेषण हैं, जिसका अभिप्राय यह है कि ईश्वर और जीवके नित्यत्वमें कोई भेद नहीं है। और प्रकृतिके लिए भी जब पेडसे उपमा देकर, उसीको दोनों पक्षियोंका आश्रयस्थान बतलाया गया है तो उसका भी नित्यत्व ईश्वर और जीवके समान ही हुआ... "॥ मुण्डकोप० प्रथम वार पृ० ४९-५०॥

समालोचना— निराकार परमात्मा अपने उपासको द्वारा की गई अपनी इस दुर्दशाको देखकर रोता होगा। बिचारेको सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमंपन्नता, सर्वाधारकताकी ऊंच पदवियोंसे हटाकर, जीवके तुल्य एक छोटासा पक्षी बनाकर उपासकोंने प्रकृतिके वृक्षपर बिठा दिया है, उसे विभुसे अणु बना दिया! यथा भक्तः तथा देवः! भक्तोंने देवको अपने समान बना लिया। चालाक भक्त जानता है कि निराकार परमात्मा बोल नहीं सकता, अतः भक्तोंके कुकर्मोंकी साक्षी भी नहीं दे सकता, अतः उसे प्रसन्न करनेके लिए कह दिया कि हम जो करतूतें करें वह तू प्रकृतिके वृक्षपर बैठे बैठे देख लिया कर! न्यायाधीश कौन? प्रकृति! परन्तु वह जड है, न्याय क्या करेगी। चलो छुट्टी हुई। जीव स्वतंत्र परन्तु नास्तिक बन गया!

ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनोंका नित्यत्व समान है। परन्तु प्रकृतिको ईश्वर तथा जीव इन दोनोंका 'आश्रय-स्थान' बताया गया है, अतः प्रकृतिकी प्रबलता स्पष्ट है! दूसरे दर्जेपर फल खानेवाले जीव, और तीसरे दर्जेपर चुपकेसे देखनेवाले निराकार परमात्माको निराकार-उपासकोंने ला बिठाया है!

म० नारायण स्वामीका अर्थ जो ऊपर दिया है, वही आर्यसमाजके अन्य विद्वानोंने भी किया है, अतः यदि इसमें दोष है तो सभी दोषी हैं। हां! श्री पं जयदेवजीको इसमें शंका अवश्य उत्पन्न हुई थी, (देखो उनका अथर्व भाष्य)।

इसपर लेखकका मत ऐसा है कि यह अर्थ सांख्यवादियोंका-प्रकृतिवादियोंका है, वेद विरुद्ध है, किसी प्रकार आर्यसमाजमें घुस आया है, अतः इसे हटा देना ही उचित है।

(७) वेद मंत्रका आस्तिकवादी देवता अनुसार अर्थ।

मन्त्रका नास्तिकवादी अर्थ होनेके दो कारण हैं, एक देवता अनुसार अर्थ न लगाना और दूसरा 'वृक्ष' शब्दसे 'सूर्यका' अर्थ न लेते हुए उसे 'प्रकृति' समझना। ऋग्वेद १।१६४ के विश्वेदेवाः- 'सब देवों' में यद्यपि सूर्य वा आदित्य समाविष्ट है, तथापि यह देवता निर्णायक नहीं। अथर्ववेदके देवता निर्णायक हैं। ऋ. ६।७।१६ में वामः आदित्यका नाम है, तथा आदित्य तथा अध्यात्मं प्रत्यक्ष सूर्यके ही नाम हैं। ऋषि ब्रह्मा भी सूर्य ही हैं। सिद्ध हुआ कि सूर्य ही अपना वर्णन आप कर रहा है! अ० २।९।२१ में पं० जयदेवजीने वृक्ष को 'सूर्य' माना है। वा० य० १७।२० से भी सूर्य ही वृक्ष सिद्ध होता है। इसीकी उपमा अ० १०।७।३८ में है। यही कठोपनिषद् ६।१ का अश्वत्थः सनातनः है। इसी सूर्य रूपी वृक्षका वर्णन गीता १५।१-२ में आया है। अब उपरोक्त अ० ९।९।२० का सत्य अर्थ देखिए—

अर्थ— (स-युजा) समान जुवेमें जकडे हुए (सखायाः) परस्पर मित्र (द्वा सुपर्णाः) दो प्रकारके शीघ्र उड जानेवाले पक्षी (समानं वृक्षं) एक ही वृक्षपर (परि) सब ओरसे (षस्वजाते) अन्नके समान फूटकर उत्पन्न होते वा उगते हैं। (तयोः अन्यः) इनमेंसे एक प्रकारका पक्षी (पिप्पलं स्वादु. अत्ति) स्वादिष्ट फलोंको खाता है, (अन्यः) दूसरा (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभिचाकशीति) सब ओर चमकता रहता है॥ २०॥

भावार्थ— सयुजा-समानतया सूर्यमें जकडे हुए। द्वा सुपर्णाः दो प्रकारके किरण, एक सूर्य किरणें और दूसरी अन्तरिक्षस्थ विद्युत् किरणें। वृक्षम्-सूर्य। स्वादिष्ट फलोंको पकानेवाली, इनमें स्वाद उत्पन्न करनेवाली, और प्राणियोंसे पूर्व उन्हें खानेवाली तथा गला सडाके फैंक भी देनेवाली सूर्य किरणें हैं। इनके विपरीत अंतरिक्षस्थ विद्युत् किरणें केवल चमकती रहती हैं, पृथिवीके मीठे फल नहीं खातीं॥ २०॥

विषयबाह्य बात थी, तो भी संक्षेपतः यथा मति सुलझा देनी आवश्यक हुई, कि पाठक देवतानुसार अर्थ करनेके सुपरिणामको प्रत्यक्ष देखकर इसपर अधिक विचार कर सकें।

सत्, सत्य, एकंसत्, व्योमसत् सूर्यके ही नाम हैं, देखो खण्ड २ तथा ५. अतः सत् शब्दसे प्रकृतिका अर्थ लेना यहां कहांतक योग्य है और वेद सम्मत है, इसपर पाठक अधिक विचार करें। मन्त्रोंका अर्थ वेदतानुसार करनेसे अनर्थ नहीं हो सकेगा।

अब पं. सातवलेकरजीके अर्थों अनुसार ॐ भूर्भुवः स्वः वाक्यके अर्थ निम्न प्रकार होंगे—

९-११ ॐ वा सूर्य ही सत्ता+ज्ञान+आनंद वा सत्+चित् आनंद वा सत्व+सुविचार+आनंद है- निराकार परमात्मा नहीं (पृ० ३१)

१२- ॐ वा सूर्य ही अस्तित्व+ज्ञान+आत्मा है।

(पृ० १४१)

१३- ॐ वा सूर्य ही उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्ता है, (पृ. १११) निराकार परमात्मा नहीं!

पाठक वृन्द! खण्ड ६ में ओ३म् के और खण्ड ७ में भूर्भुवः स्वः के अर्थोंपर विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है, कि ओ३म् के घटक अक्षर अ, उ, म् तथा भूः भुवः स्वः, साकार सूर्यके घटकावयवोंका ही वर्णन कर रहे हैं- और इनसे ऐसा स्पष्ट ध्वनित हो रहा है कि ओम् स्वयमेव ही चराचर जगत् बन गया है। यही कारण है कि स्वयं आर्यसमाजी विद्वान् भी संध्या प्रदीपिकामें लिखनेसे रुक न सके कि—

१. ओमिति ब्रह्म। ओमितीदं सर्वम्।

॥ तैत्ति० उ० अनु० ८॥

अर्थ— ओम् यह ब्रह्मका वाचक है। 'ओम्' यह सब कुछ है॥ ८॥

२. एतद्वै सत्यकाम। परं चापरं च ब्रह्म यदोंकारः।

॥ प्रश्नोप० ५।२॥

अर्थ— हे सत्यकाम! यह जो 'ओम्' अक्षर है, यह पर और अपर ब्रह्मका वाचक है॥ २॥

(सं० प्रदी० प्रथम वार पृ० ८९)

बताइये कि 'परब्रह्म- सब कुछ-ईश्वर-जीव-प्रकृति पुञ्ज-ॐ सूर्य है वा निराकार परमात्मा? [अपूर्ण]

परीक्षा विभाग

हमारे नये केन्द्र

२३३ श्री. माणेकलाल एन. ठाकर
प्रिन्सिपाल–न्यू हाई स्कूल.
नारगोल (वाया उमरगाम)

२३४ श्री. आदित्य नारायण मिश्र
ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम सरसीया तलावपर
वायडावाडी, आनंदाश्रम, बडौदा

२३५ श्री. गणेश दिनकरराव आठवले
प्रधानाध्यापक आर. के. हाईस्कूल
पो. पुलगांव जि. वर्धा (सी. पी.)

२३६ श्री. जमनादासजी व्यास, एम. ए.
साहित्य विद्यालय वर्धा (सी. पी.)

२३७ श्री. ठाकुरदास महेता मुख्याध्यापक
रोबर्टसन् म्युनिसिपल, हाईस्कूल
पो. हिंगणघाट (जि. वर्धा)

२३८ श्री. लक्ष्मण तुकाराम सावंत
सेन्ट्रल स्कूल
मसूर (जि. उत्तर सतारा)

२३९ श्री. बृजमोहनसिंह प्रधानाध्यापक,
रामकृष्ण मिशन स्कूल
लंगरटोली, बांकीपुरा पटना ४

२४० श्री. कृ. गु. देशपांडे
सरकारी हाईस्कूल
चान्दुर G. I. P. Rly.

२४१ श्री. विद्याव्रत जे. शास्त्री
शारदा मन्दिर
पो. वल्लभ विद्यानगर वाया आणंद

२४२ श्री. रानडे प्राध्यापक
एम. एम. हाईस्कूल
उमरगांव-बी. बी. सी. आई.

२४३ श्री. मगनलाल गिरजाशंकर शास्त्री
चतुर्वेदभूषण डे. औषधालय बाजार
पो. डभोई (बडौदा)

२४४ श्री. भट्टदेवशंकर प्रभाशंकर भट्ट
मु. पो. मंडाळा ता. डभोई (जि. बडौदा)

२४५ श्री. गौरीशंकर जयशंकर भट्ट
मु. सणीयाद पो. पालेज (जि. बडौदा)

२४६ श्री. रणछोडजी दयालजी देसाई
प्रिन्सिपाल–अमलसाड हाईस्कूल
अमलसाड (सूरत)

२४७ श्री. नानुभाई राजाराम शास्त्री
कृष्णनिवास, नागरवाडा, नवसारी (सूरत)

२४८ श्री. दयाराम नाथुभाई पटेल बी.ए. ओनर्स बी.टी.
एम. जी. हाईस्कूल
वराड (सुरत) वाया मढी

२४९ श्री. त्र्यंबकलाल रविशंकर शुकल एम. ए. बी.टी.
प्रिन्सिपाल–सार्वजनिक हाईस्कूल
व्यारा (जि. सूरत)

२५१ श्री. रमणीकलाल एम. व्यास प्रिन्सिपाल
धी गंगाधरा हाईस्कूल
गंगाधरा (सूरत) टी. बी. रेल्वे

Regd. No. B 1463

मुद्रक और प्रकाशक- व० श्री० सातवलेकर, बी. ए., भारत-मुद्रणालय, किल्ला-पारडी (जि. सूरत)